संकट कटै, मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बल बीरा ॥

श्री मद्गोस्वामी तुलसीदास कृत

श्री हनुमान - बाहुक

सिद्धान्त - तिलक

टिप्पणीकार - (शब्दार्थ व अर्थ सहित)

श्री श्रीकान्तशरण

समस्त तुलसी साहित्य पर विशद व्याख्या

(सिद्धान्त-तिलक) कार

श्री सद्गुरु कुटी, गोलाघाट,

श्री अयोध्याजी

प्रकाशक

पं. श्रीराम अभिलाष शरण

सद्गुरु सदन कुटी, गोलाघाट, अयोध्या (उ.प्र.)

एवं - रामकिशोर शरण (रामकृष्ण पांडेय)

श्री जानकी कुंड, चित्रकूट (जिला सतना म.प्र.)

सहयोग राशि ११/-

प्राप्ति स्थान - रामकृष्ण पांडेय, परकोटा सागर (म.प्र.)

विनम्र निवेदन

श्री मारुतसुत हनुमान। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥ कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहि होइ तात तुम्ह माहीं॥ (मा.कि. २९/३-५) के भाव से प्रत्येक ग्राम-नगर के मुहल्लों चौराहों (चउहट्ट) हट्ट, सुबह, बीथियों में, पर्वतों-वनों में सर-सरिता-सागर के तटों पर श्री हनुमान जी की मूर्तियों के दर्शन सभी को होते हैं। घर-घर में श्री जी की मंगल मूर्ति के चित्र पटों में वीर, दास और भक्ति रस से पूर्ण दर्शन सबको सुलभ हैं।

महावीर हनुमान जी वानर के आकार में श्री शिवजी का अवतार है - वानराकार विग्रह पुरारी। (वि.प. २७) श्री वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि इनका हनुमान नाम देवराज इन्द्र के वज्र प्रहार को सहने से पड़ा था। इन्होंने शिशु अवस्था में ही सूर्य, राहु, इन्द्र और वज्र के गर्व को चूर्ण कर दिया था - राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व खर्वीकरन। (वि.प. २५) उसी समय त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश से उनके अमोघ आयुध (शस्त्र) ब्रह्मास्त्र, चक्र, त्रिशूल से अवध्य होने के साथ ही और देवताओं से भी वरदान प्राप्त किये थे। श्री हनुमान जी ने सूर्य भगवान से उनके सामने पैरों से पाछिले गमन कर विद्याध्ययन किया (हनु. वा. पद ४) अतः आप तेज और वेग में सूर्य से बढ़कर हैं - जाको बाल विनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि.प. ३१) तथा - मनोजवं मारुत तुल्य वेगं जितेन्द्रिय बुद्धिमतां वरिष्ठम्। अर्थात श्री हनुमान जी की मन के समान गति और वायु के समान वेग है। परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं।

३. निर-अभिमानी हनुमान जी - श्रीरामजी से मिलकर अपने परिचय में कहते हैं - एक मैं मंद मोहवश, कुटिल हृदय अग्यान। (मा.कि.दो. २) ऐसे ही जब श्रीराम जी ने इनके वीरत्प पूर्ण कार्यों को सुनकर इनकी प्रशंसा की तब श्री हनुमान जी भगवान श्री रामजी के चरणों में पड़कर रक्षा माँगने लगे - चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥ (मा.सुं. दो. ३२) और आगे नम्रता पूर्वक यह कहा - सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥ (मा.सुं. ३२/९) लंका में श्री विभीषण जी ने श्री हनुमान जी के दर्शन पाकर उन्हें संत कहा, तब इन्होंने अपने को - उस मैं अधम सखा सुनु - (मा.सु.दो. ७) कहा। और भी प्रसंग है।

४. परम उपकारी हनुमान जी ने श्रीराम जी को परिवार समेत ऋणी बना रक्खा है। इन्होंने श्री जानकी जी की सुधी लाकर श्री रामजी को और श्रीराम जी विजय सुनाकर श्री जानकी जी को ऋणी किया। श्री लक्ष्मण जी को संजीवनी ला, जीवन दान दे और री भरत जी को - रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥ (मा.उ. १/५) का सन्देश देकर ऋणी किया। कहा भी है - साँची सेवकाई हनुमान की सुजान राय,

रिनियाँ कहाये औ बिकाने ताके हाथ जू ॥ (वि. १३४/६) भाव यह कि श्री हनुमान जी की योग्य सेवा पर श्री राम जी ने इन्हें अपने तुल्य महत्व दिया है, जिससे राम नाम के समान हनुमान नाम का प्रभाव है। नाम कलि कामतरु केसरी किसोर को ॥ (हनु. बा. १) और - नाम लेत देत अर्थ धर्म काम निरवान हो ॥ (हनु.बा. १४) अत: श्री हनुमान जी की कृपा से कोई भी श्री राम जी को पा सकता है। श्री गो. तुलसीदास जी को इन्हीं की कृपा से चित्रकूट में श्री राम लक्षन जी के दर्शन हुए थे - यह प्रसिद्ध है।

५. **खल वन पावक ग्यानघन हनुमान** जी अपने आश्रितों की रक्षा अवश्य ही करते हैं कलि की कुचालों को नष्ट करने में समर्थ हैं। श्रीराम भक्तों के लिये तो वे कामतरु हैं - राम के गुलामनि को कामतरु राम दूत - (हनु.बा. २२ देखिये) कलियुग में खलों की बहुतायत हैं। दुष्टों की संगति तो नरक बास से अधिक दुखदायी है। मीत हित जरहि सदा खल रीति। (मा.बा.दो. ४) जरहि सदा परसंपत्ति देखी ॥ (मा.उ. ३८/३) खलों की ऐसी रीति और स्वभाव है। श्रीराम जी के श्रीमुख वचन भी हैं - पर द्रोही, पर दाररत, परधन अपवाद। ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद ॥ ऐसे अधम मनुज खल .... होइहहिं कलियुग माहि ॥ (मा.उ.दो. ३९/४०) तथा निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥ बैर अकारन सब काहू सों। जोकर हित अनहित ताहू सों ॥ (मा.उ. ३८/५-६) दुष्ट लोग दम्भ और कपट के भाव छिपाने के लिये सुवेष धारण किये रहते हैं। इनका व्यवहार - आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥ (मा.कि. ६/७) है। ये खल सब कलियुग के अनुचर हैं, इसी से कपट-छल के खजाना कलियुग को कालनेमि राक्षस के समान कहा है - कालनेमि कलिकपट निधानू। (मा.बा. २६/८) श्री हनुमान जी ने कपटी मुनि वेष धारी कालनेमि राक्षसे को मार डाला था। ऐसे ही सिंहिका राक्षसी का छल कपट जानकर उसे मार डाला था, यथा - सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा ॥ ताहि मारि मारुत सुत वीरा ॥ (मा.सु. २/४-५) तात्पर्य यह कि श्री हनुमान जी के उपासक का अनर्थ कोई नहीं कर सकता। (हनु.बा. १२)

इस ग्रंथ के प्रकाशन में पं. श्री रामराजेन्द्रशरण पुजारी एव श्री तुलसीराम शरण (जैसीनगर) से आर्थिक सहयोग लिया है। श्री पुरुषोत्तम शरण (रामायणी) मुझे राहे चलते श्री हनुमान बाहुक सुनाया करते थे। श्री मानस पाठ मे इनकी अटूट श्रद्धा है और बहुजन सुखाय श्री माधव जी कटारे के सानिध्य से श्री मानस के स्वत सत पाठ में रत रहते हैं। श्री मुकेश तिवारी, श्री अनूप पांडे एवं पवन पांडे का भी उत्साह वर्द्धक सहयोग मिला। मंगल मूरति मारुतिनंदन की उपासना में इन के साथ सभी को रुचि मे वृद्धि होती रहे - ऐसी मंगल कामना से सभी को समर्पित

रामकिशोरशरण सागर
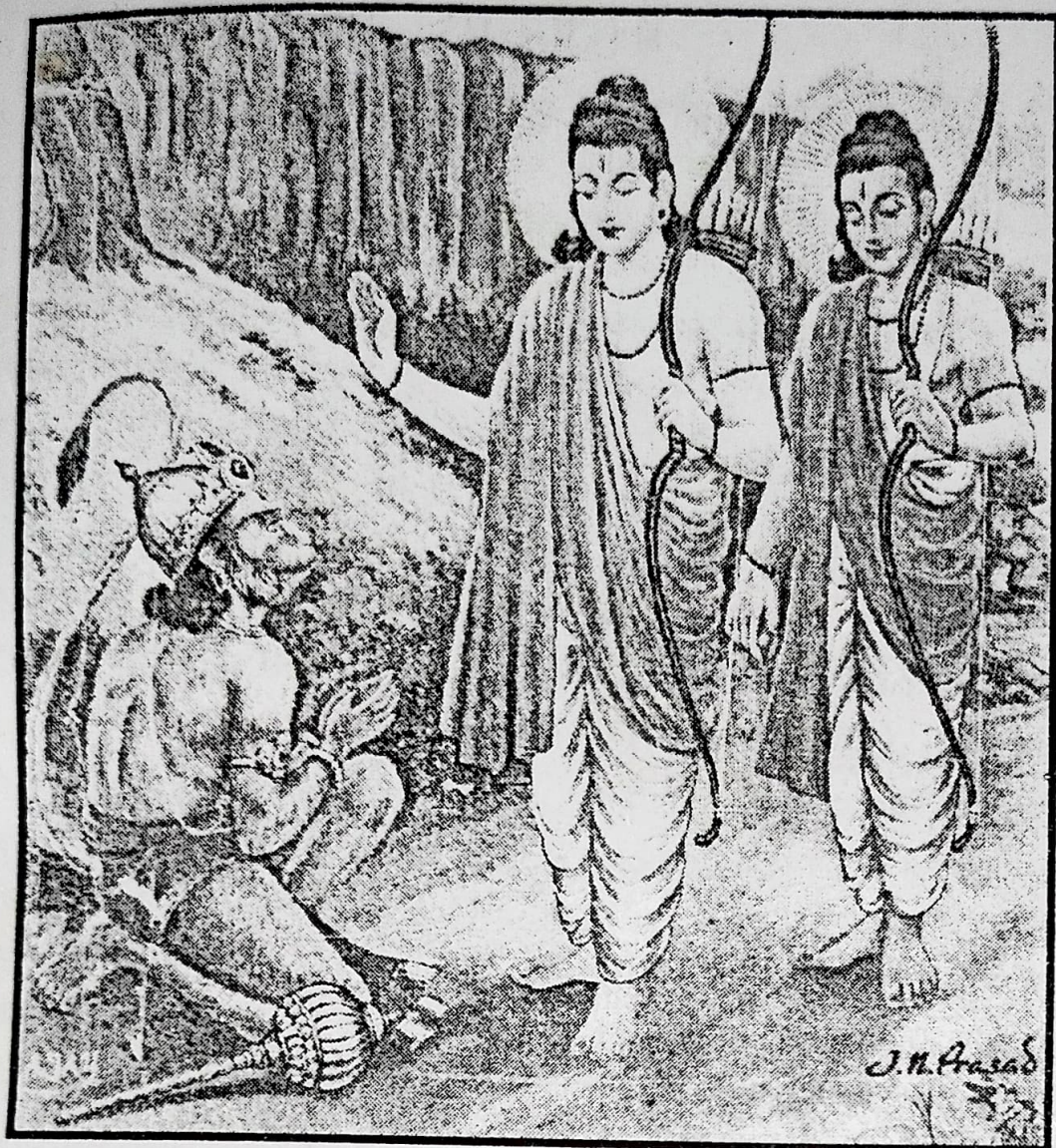
दो.- एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥२॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कुछ भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥
सुनु कपि जियँ मानिसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मा.कि.दो. २से३)

प्रस्तावना

ॐ नमो गुरुभ्य:, श्रीहनुमते नम: ॥

श्री हनुमान् वाहुक का आविर्भाव

एक समय श्रीमद्गोस्वामीजी की वाहुओं में वात-रोग की भारी पीड़ा हुई। पश्चात् सारे शरीर में फोड़े-फुंसियों की भी व्यथा हुई, उससे सारा शरीर पीड़ामय हो गया। इस पर अनेक प्रकार की औषधियाँ, यन्त्र-मन्त्र एवं देवराधन भी किये गये, यथा- ''औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये, वादि भये, देवता मनाये अधिकाति है।'' (पद ३०), अर्थात् ये सभी उपाय व्यर्थ हो गये। श्रीशिवजी से भी उलाहना दिया एवं प्रार्थना की-क.उ. १६५-१६८ तथा वि. ८ देखिये, क्योंकि यह पीड़ा किसी दुष्ट के प्रयोग करने से शिवजी के गण भैरव द्वारा हुई थी, यथा-''व्याधि भूत-जनित उपाधि काहू खल की।'' (पद ४३) - इस का विशेष देखिये।

पीड़ा विशेष बाई भुजा में थी, यथा-''सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे।'' (पद ३७) इसका विशेष देखिये। दूसरी बाहु में भी पीडा थी, यथा-''बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि.....'' (पद ३९) इसका विशेष देखिये। पीछे सारे शरीर में पीड़ा होने लगी: यथा-''पाँच-पीर, पेट-पीर, बाँहु पीर, मुँह-पीर, जर जर सकल सरीर पीर मई है।'' (पद ३८) फोड़े फुंसियों की भी व्यथा हो गई थी, यथा-''ताते तनु पेषियत घोर बरतोर मिस फूटि निकसत लोन राम-राय को।'' (पद ४१) इसका विशेष देखिये। यह पीड़ा कुछ विशेष दिनों तक रह गई थी, यथा-''एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की।'' (पद २८)

कवितावली के क्रम से कुछ लोग इस पीड़ा के समय का भी निर्णय इस प्रकार करते है कि क.उ. १६५ से १६८ तक बाहु-पीड़ा का वर्णन है, उसके पीछे क.उ. १६९ से १७७ तक महामारी का वर्णन है। उसमें 'बीसी विस्वनाथ की'-इस वाक्य से संवत् १६६५ से १६८५ तक का समय सिद्ध होता है, फिर उसी प्रसंग के 'सनीचरी है मीन की' इस वाक्य से वह महामारी का समय संवत् १६६९ के आरम्भ से १६७१ के मध्य तक का सिद्ध होता है, क्योंकि मीन राशि के शनेश्चर की स्थिति का योग उसी समय था। इस वर्णन क्रम से महामारी के पहले बाहु-पीड़ा का समय था।

दोहावली के दोहा २३५ से २३६ तक तीन दोहों में बाहु-पीड़ा का प्रसंग है और फिर दोहा २४० में 'अपनी वीसी आपुही...' इस वाक्य से उक्त महामारी का प्रसंग कहा गया है। इसमें भी वाहु-पीडा से पीछे ही महामारी का पडना सिद्ध है। अत: इन उभय ग्रन्थों का क्रम देखने से संवत् १६७१ से पहले ही बाहु-पीड़ा का समय था।

श्रीगोस्वामी जी के शरीर-त्याग का समय संवत् १६८० है। उससे लगभग दस वर्ष से तो पहले ही यह पीड़ा हुई थी।

इस पीड़ा को पहले सामान्य समझकर औषधि आदि उपर्युक्त उपाय किये गये। जब इसे भैरव आदि के द्वारा होने का अनुमान हुआ, तब श्री गोस्वामीजी ने उनके स्वामी शिवजी के प्रति उलाहना देते हुए प्रार्थना की, यह ऊपर लिखा गया। शिवजी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि शिवान्तर्यामी श्रीरामजी को ग्रन्थकार के द्वारा श्रीहनुमान्-बाहुक की रचना करवानी थी और शिवजी के ही द्वितीय विग्रह श्रीहनुमान् जी को इस रक्षा का श्रेय देना था। तब ग्रन्थकार ने अपने परम सहायक श्रीहनुमान् जी से प्रार्थना करनी प्रारम्भ की, वही यह ४४ पद्यों का 'हनुमान्-बाहुक' नामक स्तोत्र सम्पन्न हुआ। इसके पद १-२ छप्पय, ३ झूलना और १६, १७, १८, १९ तथा ३६ मत्तगयंद (सवैया) के हैं। शेष ३६ पद्य घनाक्षरी के हैं।

श्रीहनुमान्-बाहुक की बाहरी सामग्री

बाहु-पीड़ा पर पहले तो औषधियाँ की गई। उससे लाभ होता न देखकर एवं अन्य बाधा समझकर ग्रन्थकार के मित्र वर्ग ने यंत्र-मन्त्र, टोटका एवं अन्य देवाराधन के उपाय भी किये। उनसे भी शांति न मिलने पर जब ग्रन्थकार को यह निश्चित हो गया कि यह बाधा भैरव के द्वारा है, तब उन्होंने शिवजी से प्रार्थना की, परन्तु सफलता नहीं मिली, यह ऊपर लिखा गया। शिवजी भी श्रीहनुमान् जी के ही पूर्व-रूप हैं और काशी जी के अधिष्ठाता है, इससे ग्रामदेव समझ पहले उलाहना देना उचित जानकर उनसे प्रार्थना की। अत: उपर्युक्त क.उ. १६५-१६८ के चार कवित्त और वि. ८ का पद भी इस ग्रन्थ की बारी सामग्री हैं।

इस पीड़ा के समय ग्रन्थकार ने कुछ दोहे भी बनाये हैं। उनमें एक दोहा श्रीहनुमान् जी के प्रति है और दो उनके अन्तर्यामी श्रीराम जी के प्रति है, यथा -

तुलसी-तनु-सर-सुख जलज, भुज-रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी-किसोर ॥२३४॥

भुज तरु-कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रवेस।
विहँगराज-वाहन तुरत, काढ़िय मिटइ कलेस ॥२३५॥

वाहु विटप, सुख विहँग थल, लगी कुपीर कुआगि।
राम ! कृपा जल सीचिये, बेगि दीन-हित लागि ॥२३६॥

(दोहावली), इस प्रसंग में पहले श्रीहनुमान् जी से प्रार्थना की, फिर उनके अन्तर्यामी श्रीरामजी से प्रार्थना करते हुए, यह भाव प्रकट किया कि यह आप स्वयं इस पीड़ा को दूर करने का कष्ट नहीं करना चाहते हैं तो अपने द्वितीय वाहन गरूड़ जी को संकेत कर उनके द्वारा ही इसे दूर कर दीजिये, मैं अन्याय द्वारा सताया जाता हूँ। तत्पश्चात् अपनी अत्यन्त दयनीय दशा दिखाने के लिये 'लगी कुपीर कुआगि' कहा है, जिससे कृपा-जल-दान अवश्य प्राप्त हो। श्रीराम जी ने श्रीहनुमान् जी को प्रेरणा कर उनके द्वारा रक्षा कराई है, यह ऊपर लिखा गया।

परम भक्त एवं महापुरुष पर ऐसी बाधा क्यों हुई ?

भगवान् का अपने भक्तों के प्रति बर्त्ताव का रहस्य उनके परम भक्त ही जानते हैं, यथा-''त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति-प्रणाश संसार-विमोचनादय:। भवन्ति लीलाविधयश्च वैदिकात्त्वदीयगभाररमनोनुसारिण: ॥'' (आलवन्दार-स्त्रोत्र २२) अर्थात् श्रीयामुनाचार्यजी कहते हैं कि हे प्रभो ! आपके आश्रितों की जगत् में उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश तथा उनका संसार-मोचन आदि देखे जाते हैं। वे आपकी ही गम्भीर इच्छा से लीला-विधि में एवं वैदिक-धर्म-स्थापन के लिये होते हैं (उनपर कर्म काल आदि का प्रभाव नहीं चलता)।

इसके उदाहरण में मा. बा. १२३-१३९ मं श्रीनारदजी का चरित है। उसमें 'हरिइच्छा बलवान्' यह कह कर उसके द्वारा श्रीनारद जी का मोहवश किया जाना और फिर उससे उनकी रक्षा आदि का विधान है। वहाँ उस लीला-विधि से भगवान् ने भक्तों की मान-मद निवृत्ति की विधि प्रकट की है - यह उस चरित के प्रारम्भ में ही लक्षित किया गया है, यथा-''भव-भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान-मद ॥'' (दो. १२४)

उसी दृष्टि से विचार करने पर श्री गोस्वामी जी के इस बाहु-पीड़ा-प्रसंग से कई प्रकार के धर्म विधान प्रकट हुए हैं -

(१) श्रीहनुमान् जी की अपरिमित प्रभुता और उनका श्री गोस्वामी जी पर अत्यन्त स्नेह ग्रन्थ के वहुत स्थलों पर सप्रमाण लिखे गये हैं - पद २१, २२, २९, ३० आदि देखिये। फिर भी श्रीहनुमान् जी ने इन्हें इतना कष्ट भोग करा और विलम्ब करके इनकी रक्षा की है। इस निष्ठुरता का रहस्य यह है कि श्री हनुमान् जी के अंतर्यामी श्रीरामजी को श्री गोस्वामी जी के द्वारा यह इतना बड़ा स्तोत्र निर्माण करा, इससे अपने परमभक्त श्री हनुमान् जी की कीर्ति प्रकट कर, इसके द्वारा भविष्य में जगत् के कल्याण का एक विधान प्रकट करना था, इसलिये उन्होंने श्रीहनुमान्जी से रक्षा में विलम्ब करवाया

था। तथा इस स्तोत्र से श्री गोस्वामी जी को रचयिता होने का यश देना था। ऐसे प्रसंग और भी है -

(क) श्रीजानकी जी के पातिव्रत्य की महिमा प्रकट करने के लिये श्रीरामजी ने उन्हें दुर्वाद कहा है, यथा-''तेहि कारन करुना निधि, कहे कछुक दुर्वाद।'' (मा.लं. १०७) - इसमें 'करुनानिधि' इस पद का भाव यह कि श्रीरामजी ने अग्नि-देव के द्वारा श्रीजानकी जी को प्रकट करने के साथ-साथ उनकी कीर्ति-स्थापित करने का भाव रक्खा था, यथा-''रामेणेदं विशुद्धयर्थे कृतं वे त्वद्धितैषिणा।'' (बाल्मी.६/११९/३३) अर्थात् स्वर्ग से आकर राजा दशरथ ने दिव्य रूप से श्री सीताजी से कहा है कि तुम्हारा हित करने के लिये और तुम्हारी पवित्रता घोषित करने के लिये तुम्हारी परम हितैषी श्रीरामजी ने ऐसा (अग्नि-परीक्षा का वर्त्ताव) किया है।

(ख) श्रीरामजी ने अपने परम भक्त एवं परम प्यारे श्रीभरत जी को भी भारी वियोग का संयोग कर, उनके द्वारा अपने परम प्रेम का आदर्श प्रकट कर, उससे जगत् का उपकार किया है, यथा-''प्रेम अमिय मंदर बिरह, भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटेउ सुर साधु-हित, कृपासिंधु रघुबीर॥'' (मा. अ. २३८)।

(ग) श्रीराम जी ने श्री प्रह्लादजी को अत्यन्त कष्ट सहन करा उनकी निष्ठा संसार में प्रकट की है, पीछे प्रकट होने पर भले ही उनसे क्षमा माँगी है, यथा-''क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमार मेतत् क्वैताः प्रमत्त-कृतदारुणयातनास्ते। अवलोकितं विषममेतदभूतपूर्वे क्षन्तव्य मङ्ग यदि चागमने विलम्बः॥'' यह प्राचीन श्लोक प्रसिद्ध है, अर्थात् भगवान् नृसिंह श्री प्रह्लाद जी से कहते हैं - वत्स प्रह्लाद! इस प्रकार का विषम काण्ड ! कहाँ तो तुम्हारी पाँच वर्ष की अवस्था और अत्यन्त सुकुमार शरीर और कहाँ इस प्रमत्त-दैत्य कृत दारुणयातनायें!! इस दारुण दशा को देखते हुए भी मेरे आने में विलम्ब हुआ, इसे तुम क्षमा करो।

(२) जीवों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं-सच्चित कर्म जीव के मुमुक्षु होकर भगवान् की शरण होते ही नष्अ हो जाते हैं, यथा-''सनमुख होइ जीव मोहिं जब हीं। जनम कोटि अघ नासहिं तव हीं॥'' (मा. सुं. ४३) आत्मसमर्पण होने पर मुमुक्षु के शरीर से भगवान् के कैङ्कर्य कर्म ही होते हैं, इससे वे क्रियमाण कर्म भक्तिरूप में परिणत हो, इसे फल-प्रद नहीं होते। रहे प्रारब्ध कर्म ये भोग दे कर ही समाप्त होते हैं, यथा-''अवशयमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'' यह शास्त्र-वचन प्रसिद्ध है। प्रारब्ध-भोग में यही रहस्य है कि इसी पर मनुष्य की आयु रहती है। यदि इसका नाश हो तो तुरत शरणागत की मृत्यु हो जाय। परन्तु शास्त्र मयादा ऐसी

है, यथा- आप्रयाणात्तत्रापि हि दृष्टम् । (ब्र. सू. ४/१/१२) यथा-''स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते ।'' (छान्दो. ८/१५/१) अर्थात् आयु भर उपासना की आवृत्तियाँ करते रहना ही चाहिये। यदि प्रारब्ध नाश हो तो इन शास्त्र-वचनों पर आवात हो, इस लिये शासत्र-मर्यादा की रक्षा करते हुए भगवान् भक्तों को विवेक एवं धैर्य देकर प्रारब्ध-भोग कराते हुए भी उन्हें वैसे दु:ख का अनुभव नहीं होने देते। यहाँ इस वैदिक-धर्म की मर्यादा का संस्थापन भी किया गया है।

(३) कर्मों की गति बड़ी सूक्ष्म है, यथा-''गहना कर्मणो गति: ।'' (गीता ४/१७) एक कर्म-भोग के साथ और भी हेतु हो जाते हैं। जैसे यहाँ एक कर्म-फलरूपी बात-रोग के साथ भैरव कृत भूत-बाधा भी है। प्रार्थना करने पर भगवान् स्वयं तथा अपने किसी पात्र के द्वारा ऐसी बाधा की रक्षा करते हैं, इस प्रकार की प्रार्थना गोप्तृत्व वरण-प्रवत्ति है। अतएव भगवान् के कैंकर्योपकरण रूपी शरीर के रक्षणार्थ उनसे प्रार्थना करने पर प्रपत्ति की हानि नहीं होती यह विधि भी इस प्रसंग से प्रकट की गई है।

(४) ऐसे भयंकर कष्ट झेलते हुए भक्तों को यह समझ कर धैर्य एवं संतोष रखना चाहिये कि भगवान् अपनी वैदिक मर्यादा (कर्म-भोग) की सामान्य रीति की रक्षा क[illegible] हुए भी किसी विशेष उपाय की ओट से हमारी रक्षा करते ही हैं। अत: सदा उनकी दया हम पर रहती है। जैसे कि उन्होंने श्री गोस्वामी जी से यह स्तोत्र निर्माण करा इससे उनकी रक्षा की है। अत: भक्तों को विश्वासपूर्वक इस स्तोत्र से लाभ उठाना चाहिये। इस घटना से इस स्तोत्र का महत्त्व भी प्रकट किया गया है।

पाठ-क्रम पर विचार

इस स्तोत्र के पदों के क्रम पर कुछ विवाद है पद ३५ एवं ४४ के विशेषों में देखिये। मेरे विचार से पद ३४ तक हो जाने पर पद ३६ से ४४ तक की व्यवस्था हुइ्र है, उस पर पद ३५ में ग्रन्थकार ने पीड़ा-निवृत्ति की कृतज्ञता प्रकट की है। फिर पीछे प्रार्थना-सिद्धि की व्यवस्था का पद ३६ से ४४ तक वर्णन किया है कि पहले पद ३४ तक श्रीहनुमान् जी ने ध्यान नहीं दिया। तब मैंने उनके अन्तर्यामी श्रीराम जी को अनुकूल किया। उसके पीछे काशीक्षेत्र के अधिष्ठाा श्रीहनूमान्जी के शिव रूप से भी पद ४३-४४ में साथ-साथ प्रार्थना की। तव श्रीहनूमान्जी ने कृपा करके पीडा को जडके साथ नष्ट किया है।

कार्य-सिद्धि के पीछे व्यवस्था कहने की यह रीति पुरानी है। महाभारत में भीष्म पितामह के शर-शय्या पर पडने के पीछे उनके युद्ध की व्यव्रस्था कही गई है। वैसे ही द्रोण-वध के पीछे पूछे जाने पर द्रोण युद्ध की बातें कही गई हैं एवं कर्ण-वध हो जाने के पीछे पूछने पर कर्ण-युद्ध की बातें कही गई हैं। उसी प्रकार ग्रन्थकार ने पीड़ा-

निवृत्ति पद ३५ में ही कहकर पीछे उसकी अन्तरङ्ग बातें पद ३६ से ४४ तक कही हैं।

अत: इस श्रीहनुमान्-बाहुक का पाठ जैसे चला आता है, वैसे ही रहना चाहिये। यही ठीक क्रम हैं। इसी क्रम से पाठ करने पर लोगों की ऐहिक और पारलौकिक सिद्धियाँ होती भी हैं। फिर बिना किसी प्रवल आधार के इसमें हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीहनुमान्-बाहुक की उपयोगिता

ग्रन्थकार ने यद्यपि इस ग्रन्थ का निर्माण पीड़ा की व्याकुली में किया है यथापि इसकी रचना सुन्दर हुई हैं, क्योंकि महा पुरुषों की प्रकृति-वियुक्त अवस्था रहती है। अत: देह-दु:ख से उनके स्वरूप में एवं वृत्ति में विकार नहीं आता और फिर ग्रन्थकार की प्रतिभा तो दिव्य थी। इस स्तोत्र से आप की पीड़ा निवृत्त हुई। आज दिन भी इस स्तोत्र रत्न के विविध प्रकार के अनुष्ठानों से लोगों की ऐहिकामुष्मिक-सिद्धियाँ होती हैं, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है, यथा-''प्रगट प्रभाव को'' (पद ३१), यह ग्रन्थकार ने कहा है। मैंने स्वयं दो बार इस स्तोत्र के सामान्य रीति से पाठ करने मात्र से इससे प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव किया है -

(१) एक बार श्रीचित्रकूट में मुझे बात-व्याधि हो गई। वह कुछ शान्त हुई। फिर अचानक एक बाहु में झुन-वायु का प्रकोप हो गया। हथेली से बाहुमूल तक बड़े वेग से वायु चलती थी। लोगों ने कहा कि इससे बाहु-शून्य होने की सम्भावना है। एक वृद्ध महात्मा ने मुझसे बाहुक-पाठ करने को कहा। दस-बारह दिन के सामान्य पाठ से ही एक दिन बड़े वेग से पित्त का प्रकोप हुआ। एक प्रहर की ही बीमारी में पित्त गिर कर शान्त हो गया। उस पित्त-प्रकोप से वह चलने वाला बात-रोग दूर हो गया। लगभग १५ वर्ष हुए फिर नहीं हुआ।

(२) एक बार मैं श्री अयोध्या जी से कानपुर होकर श्रीचित्र कूट जा रहा था। मार्ग में औंग गुधराली की ठाकुरबाड़ी में गया। वहाँ एक नवयुवक ब्राह्मण को देखा, उसका सारा शरीर फोड़े फुंसियों से पूर्ण था। वह वहाँ के बिन्दकी रोड एवं कानपुर के अस्पतालों से वरसों प्रयास करके हताश हो गया था। उसे मैंने एक प्रति हनुमान् वाहुक देकर इसका पाठ करने को कहा। वह दस बारह दिन के पाठ में ही अच्छा होने लगा। पीछे मैंने सुना कि वह नीरोग हो गया, अभी भी वह है।

शारीरिक रोगों के अतिरिक्त और भी सब प्रकार की लौकिक बाधायें इस स्तोत्र से निवृत्त होती है-पद ३२ देखिये।

इनके अतिरिक्त इससे मानस रोग मोह, काम, क्रोध, लोभ एवं राग-द्वेष आदि तथा कलियुग कृत बाधायें भी निवृत्त होती है। वि. ५८ में रावण मोह रूप, मेघनाद काम रूप और कुम्भकरर्ण अहंकार रूप तथा शेष राक्षस ऐसे ही मानस-रोग रूप कहे गये हैं। तदनुसार -''कुंभकर्न-रावन-पयोदनाथ ईधन को तुलसी प्रताप जा को प्रबल अनल भो।'' (पद ७), इस प्रभाव से श्री हनुमान् जी इन मोह आदि मानस-रोगों का नाश करते हैं। तथा-''बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो माथे पगु बली को, निहारि सो निवारिये।'' (पद २१) इसका विशेष देखिये-इस प्रभाव से श्री हनुमान्जी कलि-कृत बाधाओं को दूर कर सकते हैं।

इस स्तोत्र के द्वारा आराधित होकर श्रीहनुमान् जी भक्तों के सभी मनोरथ सिद्ध करते हैं-पद ९ के ''नाम कलि कामतरु केसरी-किसोर को।'' पद १४ के ''नाम लेत देत अर्थ, धर्म, काम, निरबान हो'' तथा पद २२ के ''राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत.......'' - इनके विशेष देखिये।

इस स्तोत्र के अनुष्ठान से उपर्युक्त रीति से बहुत प्रकार के लाभ होते हैं। इसके अनुष्ठान की भाँति-भाँति की विधियाँ महात्माओं के पास हैं। उनसे प्राप्त कर इससे लाभ उठाना चाहिये।

– तिलककार

हे दीनबन्धु, कृपालु, करूणासागर ।
कृपासिंधु बंधु दीन के आरत हितकारी ।
प्रनतपाल विरूदावली सुनि जानि बिसारी ॥
सेइ न धेइ न सुमिरि के पद प्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहिब राम सो, भरि पेट बिगारी ॥
नाथ गरीब निवाज है, मैं गही न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओर ते बनि परै सो कीबी ॥

श्री सदगुरू चरण स्नेहाकांक्षी

रामकिशोर शरण

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥
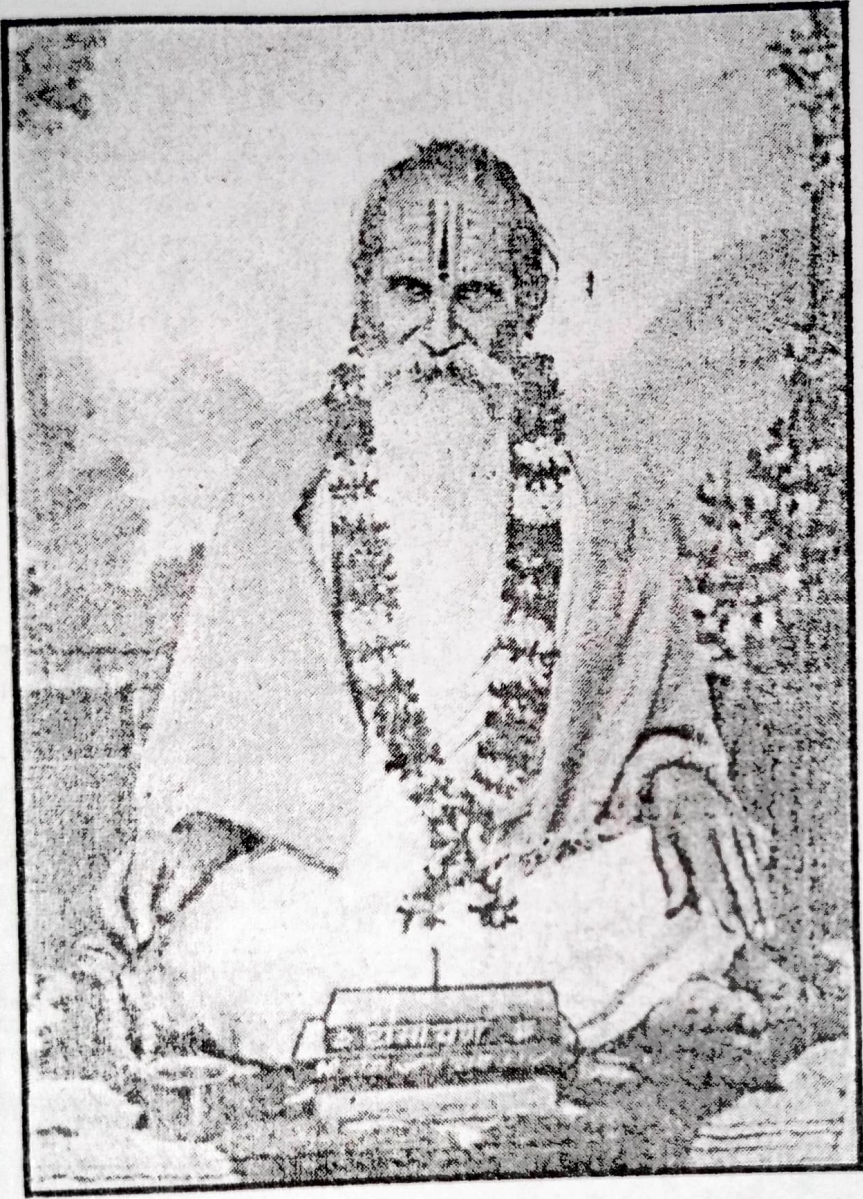
श्री श्रीकान्तशरणजी

सद्गुरुकुटी, गोलाघाट श्रीअयोध्याजी

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

श्रीहनुमान् बाहुक

अतुलित-बल-धामं स्वर्ण-शैलाभदेहं, दनुजवन-कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल-गुण-निधानं वानराणामधीशं, रघुपति-वरदूतं वातजातं नमामि ॥

महावीर विनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना

मैं महावीर श्रीहनुमान्‌जीकी विनती करता हूँ, जिनके यशका श्रीराचन्द्रजीने स्वयं (अपने श्रीमुख से) वर्णन किया है ॥

सो. - प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥

मैं पवनकुमार श्रीहनुमानजीको प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वनके भस्म करने के लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञानकी घनमूर्ति हैं और जिनके हृदयरूपी भवन में धनुष-वाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं।

कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।
वार वार नाएसि पद सीसा । बोला वचन जोरि कर कीसा ।।
अव कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आरिष तव अमोघ बिख्याता ।।

❁ ॐ नमोगुरुभ्य: ❁ ❁ श्री सीतारामाभ्यांनम: ❁
❁ भगवते श्रीमतेरामानन्दायनम: ❁ ❁ श्रीमतेहनुमतेनम: ❁

हनुमान-वाहुक सिद्धान्य-तिलक

दोहा -श्रीगुरु-पद-रज आँजि दृग, सिय-रघुवर-पद ध्यान।
भरत-लखन-रिपुहन चरन, सुमिरउँ हिय हुलसान ॥

सश्याम छप्पय -

सुमिरउँ हिय हुलसाय पवन-सुत पावन नामू ।
जेहि सुमिरत जन हेतु ढरत आतुर सिय रामू ॥
जिन्ह निज सेवक-रीति स्ववश किय सिय-रघुवीरहि ।
प्रभु-गुण-गण-अनुराग-मगन नित राख सरीरहि ॥
प्रभु भगतन-हित कामतरु, कपिकुल-पति गुण ज्ञान-निधि ।
देहु सुमति जेहि अनसरहुँ, तुलसी वाहुक तिलक विधि ॥

छप्पय (१)

सिंधु-तरन, सिय-सोच-हरन, रबि-बाल-बरन-तनु ।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु के काल जनु ॥
गहन-दहन, निरदहन लंक नि:संक, बंक भुव ।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवन सुव ॥
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल-संकट-विकट॥

अर्थ - हे समुद्र का अल्लंघन करने वाले और श्रीजानकी जी के शोक का हरण करने वाले, श्रीहनुमान्जी ! आपके शरीर का रंग उदय कालीन सूर्य के समान लाल है । आपकी भुजायें लम्वी (आजानुवाहु) है, आपकी मूर्ति

भयंकर है, आप ऐसे जान पड़ते हैं कि मानो काल के भी काल हैं। आप (रावण की) अशोकवाटिका के जलाने वाले और निश्शंक होकर लंकापुरी को विशेषकर भस्म करने वाले हैं। आपकी भौंहें टेढ़ी हैं। हे पवन कुमार ! आप बलवान् राक्षसों के अभिमान् और मद का दमन करने वाले हैं। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि हे श्रीहनुमान्‌जी ! आप सेवा करते ही बड़ी सुगमता से प्राप्त होने वाले हैं और अपने सेवकों का हित करने के लिये सदा उनके निकट रहने वाले हैं। गुणगान करने, प्रणाम करने, ध्यान से स्मरण करने एवं अपने नाम का जप करने से आप समस्त कठिन संकटों का नाश करने वाले हैं।

(२)

स्वर्न-सैल-संकास, कोटि-रबि-तरुन-तेज-घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड, नख बज्र, बज्र तन॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना दसनानन।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन॥
कह 'तुलसिदास' बसजासुउर, मारुत सुत मूरतिबिकट
संताप पाप तेहि पुरुष कहँ, सपनेहु नहिं आवहिं निकट

अर्थ – हे श्री हनुमान्‌जी ! आपका शरीर सोने के पर्वत (सुमेरुगिरि) के समान है। आप करोड़ों मध्यान्ह के सूर्य के समान तेजो राशि और विशाल हृदय (चौड़ी छाती) वाले हैं, आपकी भुजायें अत्यन्त बलबती हैं। बज्र के समान नख और बज्र के समान कठोर आपका शरीर है। आपके नेत्र पीले हैं और भौंहे, जीभ, दाँत एवं मुख अत्यन्त भयंकर हैं। भूरे रंग के केश (शिर के बाल) हैं और दुष्टों के समूह के बल को नष्ट करने वाली आपकी कठोर पूँछ है। श्रीतुलसीदास जी कहते हैं कि हे पवननन्दन जी ! आपकी विशाल मुर्ति जिसके हृदय में निवास करती है, उस पुरुष के समीप दुःख और पाप स्वप्न में भी नहीं आते।

विशेष–'स्वर्न सैल संकास', –यथा– 'कनक भूधराकार सरीरा।' (मा.सुं. १५), ''मेरुमन्दरसंकाशो वभौ दीप्तानलप्रभः ।'' (वाल्मी. ५/३७/३७),

''जातरूपाचलाकारविग्रह लरात ....'' (वि. २८), 'कोटि रवि तरुन तेजधन', यथा-
''वालार्काभिमुखो वालो बालार्क इव मूर्तिमान्। ग्रहीतुकामो वालार्क प्लवतेंवरमध्यग:।''

झूलना (३)

पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर,
सर्व सरि समर समरत्थ सूरो ।
बाँकुरो बीर बिरुदैत विरुदावली,
वेद बंदी बदत पैज पूरो ॥
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह जासु बल,
बिपुल-जल-भरित जग-जलधि झूरो ।
दीन दुख दमन को कौन तुलसीस है,
पवन को पूत रजपूत रूरो ॥

शब्दार्थ-पंचमुख = पाँच मुख वाले शिवजी। छ मुख = षड़ानन, स्वामिकार्तिक। भृगुमुख्य = परशुराम। सरि = बराबर, समसरि। बाँकुरो = चतुर बहादुर। विरुदैत = बानावंद, बहुत अधिक प्रसिद्ध बीर। रजपूत (सं. राजपुत्र) = राजकुमार वीरपुरुष, योद्धा-हिं. श. सा.। रूरो = अत्यन्त सुन्दर।

अर्थ-(श्रीहनुमान् जी) श्री शिवजी, श्री स्वामि कार्तिकजी भी परशुरामजी तथा दैत्य योद्धा एवं देव योद्धा-इन सबके साथ बराबर युद्ध करने में समर्थ शूर वीर हैं। आप चतुर योद्धा और बहुत अधिक प्रसिद्ध बीर हैं, आपके सुयश की पक्तियों का वेद रूप भाँट वर्णन करते हैं कि आप सब प्रकार की प्रतिज्ञाओं के पूर्ण करने वाले हैं। जिनके गुणों की कथाओं को श्रीरघुनाथजी श्रीमुख से कहते हैं। जिनका शरीर रूपी समुद्र बल रूपी अगाध जल से भरा हुआ है, उसके समक्ष संसार रूपी समुद्र बल रूपी जल में सूखा हुआहै, अर्थात् संसार में किसी भी प्राणी में आप केवल के अल्पांश की भी तुलना नहीं हो सकती। उन तुलसीदास के स्वामी, पवन के पुत्र अत्यन्त सुन्दर राजकुमार एवं वीर पुरुष श्रीहनुमान्जी के अतिरिक्त दीनों के दु:खों का नाश करनेवाला और कौन है।

घनाक्षरी (४)

भानु सो पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर फारसो ।
पाछिले पंगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम कपि-बालक-बिहार सो ।
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि-हर-बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो ।
बल कैधौं वीर रस, धीरज कै, साहस कै,
'तुलसी' सरीर धरे सबनि को सार सो ।

शब्दार्थ-फेरफार = टाल मटोल, बहाना । क्रम = पाठ क्रम । भ्रम = भूल । खँभार = घबराहट, विस्मय ।

अर्थ-श्रीहनुमान् जी सूर्य भगवान् के समीष विद्या पढ़ने के लिये गये । सूर्य भगवान् ने अपने मन में इनकी बालक्रीड़ा का अनुमान करके कुछ टाल मटोल (बहाना) किया (कि मैं एक जगह स्थिर नहीं रहता और आमने-सामने रह कर ही पढ़ना और पढ़ाना हो सकता है) । श्रीहनुमान्‌जी आकाश मार्ग में सूर्य भगवान् की ओर मुख करके पैरों से पीछे की ओर प्रसन्न मन से वानर के बच्चे के खेल के समान गमन करते हुए पढ़ते थे, उनके पाठ्य क्रम में किसी तरह की भूल नहीं होती थी । इनके इस आश्चर्य रूप खेल को देखकर इन्द्र आदि लोकपाल, विष्णु जी, शिवजी और ब्रह्माजी के नेत्रों में चका चौंध (तिल मिलाहट) तथा चित्तों मं घबराहट-सी हो गई । (वे सोचने लगे कि) ये न जाने बल, न जाने वीर रस, न जाने धैर्य और न जाने साहस है, अथवा श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि ये इन सबके सार रूप ही शरीर घारण किए हुए हैं ।

(५)

भारथ में पारथ के रथकेतु कपिराज,
गाज्यो सुनि कुरुराज दल हल बल भो ।

कह्यो द्रोन भीषम समीरसुत महावीर,
वीर-रस-वारि-निधि जाको बल जलभो ॥
वानर सुभाय वाल केलि भूमिभानु लगि,
फलँगु फलाँगहू ते घाटि नभतल भो ।
नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जो हैं,
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो ॥

शब्दार्थ-भारथ = महाभारत के युद्ध में। हल बल = खलबली, हलचल। फलँगु = स्वल्प, फलँगु शब्द संस्कृत के फल्गु शब्द का विकृत रूप है, यथा-'असार फल्गु शून्यं (तु) .....' (अमर कोष) इसका अर्थ पं. शक्तिधर शुक्ल ने निरर्थक निर्बल या सार रहित लिखा है। यहाँ 'निर्वल' का भावार्थ लेकर स्वल्प अर्थ लिया है। फलाँग = तड़पान, कुदान, डेग या चौकड़ी। नभतल = आकाश मंडल।

अर्थ-महाभारत (के युद्ध) में अर्जुन के रथ की पताका पर कपीश्वर श्री हनुमान् जी ने गर्जन किया, उसे सुनकर दुर्योधन की सेना में खलबली मच गई। तब (उस सेना को सान्त्वना देते हुए) द्रोणाचार्य और भीष्म-पितामह ने कहा कि ये महावीर पवनकुमार श्रीहनुमान् जी हैं, जिनका बल वीररस रूपी समुद्र का जल हुआ है। इनकी वानर-स्वभाव की बालक्रीड़ामें पृथिवी से सूर्यभगवान् पर्यन्त का आकाश मंडल इनके स्वल्प कुदान से भी कम ही हुआ। (यह सुन कर) दुर्योधन की सेना के योद्धा गण शिर नवा नवा कर और हाथ जोड़-जोड़ कर इन्हें देखने लगे। श्री हनुमान् जी के दर्शन को उन्होंने जगत् में अपने जीवन का फल प्राप्त होना माना।

(६)

गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाई लंक,
निपट निसंक पर पुर गल बलं भो ।
द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,
कंदुक-ज्यों कपि खेल बेल कैसो फल भो ॥
संकट समाज असमंजस में राम राज,

काज जुग-पूगनि को करतल पल भो ।
साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह,
लोकपाल पालनि को फिरि थिर थल भो ।।

शब्दार्थ-लाइ = जलाइ, यथा-'ख्याल लंका लाई कपि राँड की-सी झोपरी ।।' (क.लं. २७), 'लाइ-लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ ...' (क. सुं. ४)। गलबल = हलचल, हल्ला। पर-पुर = शत्रु के नगर (लंका) में। ख्याल (खेल) = खेल, क्रीड़ा। समाज = सम्पूर्ण सेना। राम राज = श्रीराम जी महाराज। पूगनि = पूर्ण होने को, पार लगने को।

अर्थ-(भीष्मपितामह कहते हैं-) हनुमान् जी ने समुद्र को गाय के खुर के समान करके (अत्यन्त सुगमता से लाँघ कर) नितान्त निडर होकर लंका-सी (सुरक्षित) नगरी को होलिका के समान (सुख पूर्वक) जला डाला जिससे शत्रु (रावण) की नगरी में हल्ला मच गया। द्रोणाचल सरीखे (भारी) पहाड़ को आपने खेल (सुगमता) में ही उखाड़ कर हाथ में गंद सरीखा ले लिया, वह इन कपिराज श्रीहनुमान् जी के लिये बेल के फल के समान खेल की सामग्री हो गया। जिस समय (श्री लक्ष्मण जी को शक्ति लगी थी) सम्पूणृ वानरी सेना संकट में थी और श्रीराम जी महाराज भी दुविधा एवं कठिनाई में थे, उस समय युग भर में पूर्ण होने वाला कार्य आप के हाथों से पल भर में (अत्यन्त शीघ्र) हो गया। श्री तुलसीदास जी के स्वामी श्रीहनुमान् जी बड़े साहसी और सामर्थ्यवान् हैं, जिनकी भुजायें इन्द्र आदि लोकपालों का पालन करने और उनको फिर से स्थिरता के साथ बसाने के लिये निवास स्थल हुई।

(७)

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानो,
नाप के भाजन भरि जल निधि जल भो ।
जातुधान-दावन परावन को दुर्ग भयो,
महामीन वास तिमि तोमनि को थल भो ।।
कुम्भकर्न रावन पयोदनाद ईंधन को,

तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान,
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो।

शब्दार्थ–गाड़ै = गढ़ा। दावन (सं. दमन) = दमन, नाश। पराबन = भागना। दुर्ग = किला। महामीन = मछलियों की जाति में सबसे बड़े राघव आदि। तिमि = समुद्र में रहने वाला मछलियों के आकार का एक बड़ा भारी जन्तु–हि. श. सा.। सौ योजन की मछली–हरि हरप्रसाद जी। 'रोहितो मद्गुरः शालो राजीवः शकुलस्तिभिः। तिमि-ङ्गलादयश्चाथ यादांसि जलजन्तवः ॥' (अमर कोष), मिति को निगलने वाली को तिमिंगिल और उसे भी निगलने वाली को तिमि–गिल–गिल कहते हैं, जिसे उपर्युक्त राघवादि की श्रेणी में महामीन कहते हैं। तोमनि = समूहों।

अर्थ–(श्रीहनुमान् जी के समुद्र–लंघन के समय कूदने से) कच्छप (भगवान) की पीठ में इनके पैरों (की एँडी) के प्रहार से गड्ढे पड़ गये, वे ही मानों भरे हुए सम्पूर्ण समुद्र के जल को नापने के लिये पात्र (वर्त्तन) हुए। रावणादि राक्षसों का नाश करते समय उन्हें भागने से रोकने के लिये (वही समुद्र) किले हो गये और उससे इतना विशाल सागर हुआ कि जिसमें राघवादि महामीन एवं तिमि नाम मत्स्यों के समूहों के निवास करने के लिये अगाध तथा विस्तृत स्थल हुआ। श्रीतुलसीदास जी कहते हैं कि कुम्भकर्ण रावण और मेघनाद रूपी जलाने की सूखी लकड़ियों के लिये, जिसका प्रताप प्रचंड अग्नि हुआ। अतः, भीष्मपितामह कहते हैं कि मेरे अनुमान (अटकल) में श्रीहनुमान् जी के समान् महान् बलवान् तीनों लोकों में कोई नहीं हुआ, न है और न होगा।

(८)

दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू,
अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो।
सीय–सोच–समन, दुरित–दोष–दमन,
सरन आये अवन लखन–प्रिय प्रान सो ॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो,

अर्थ-शत्रुओं की सेना का दमन करने में जिनका बल लोकों में विख्यात है। देवताओं को बन्दीखाने से छुडाने वाले श्रीहनुमान् जी का यश वेद गाते हैं। श्रीहनुमान्‌जी कायिक वाचिक और मानसिक पाप एवं दैहिक, दैविक और भौतिक ताप रूपी अन्धकार और पाले का नाश करने में प्रवीण हैं। अपने सेवक रूपी कमल को सुख देने में प्रात:काल में उदय होने वाले सूर्य के समान है। श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरे हृदय में एक श्री हनुमान् जी की ओर का भरोसा है, इस बल पर मैं लोक और परलोक की व्यवस्था से चिन्ता रहित हूँ, स्वप्न में भी मेरे हृदय में लोक और परलोक की अब चिन्ता नहीं है। श्री हनुमान् जी श्री रामजी के लाडिले सेवक हैं और श्री शिवजी के स्वरूप एवं महाशंभु के अवतार हैं। श्रीकेशरी बानर के पुत्र श्रीहनुमान् जी का नाम इस कलियुग में कल्पवृक्ष है।

(१०)

महाबल सीम, महाभीम, महा बानइत,
महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को।
कुलिस कठोर तन, जोर परै रोर रन,
करुना-कलित मन धारमिक धीर को॥
दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को,
सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को।
सीय सुखदायक दुलारो रघुनायक को,
सेवक-सहायक हैं साहसी समीर को॥

शब्दार्थ-रोर = हल्ला, कोलाहल, यथा-''परी भोरही रोर लंक गढ, दई हाँक हनुमान।'' (गी. लं. ९)। कलित = प्राप्त, सुसज्जित, सुंदर-हि. श. सा.।

अर्थ-आप महान् बल की काष्ठा (हद), महान् भयंकर और महान् बाना वाले हैं। रघुवंशियों में बीर श्रीरामजी के द्वारा चुने हुए आप 'महावीर' इस संज्ञा से प्रसिद्ध हैं। आप जब अपने वज्र से कठोर शरीर के द्वारा परिश्रम करते हैं, तब युद्ध में कोलाहल मच जाता है। धैर्यवान् और धर्मात्मा आपका मन करुणा

से सुसज्जित (करुणामय) रहता है। आप दुर्जनों के लिये काल की भाँति भयंकर हैं और सज्जनों का पालन करने वाले हैं। आप स्मरण करने के मुझे तुलसीदास की पीड़ा का हरण करने वाले हैं। आप श्रीसीता जी को सुख देने वाले और श्रीरघुनाथ जी के लाड़ले है। हे पराक्रमी पवनदेव के पुत्र ! आप अपने सेवकों की सहायता करने वाले हैं।

(११)

रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर,
मीच मारिबे को ज्यायबेको सुधा पानभो।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे कृसानु, पोषिबे को हिमभान भो॥
खल दुख दोषिबे को, जल परितोषिवे को
माँगिबों मलीनता को मोदक सुदान भो।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँपुर,
तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो॥

शब्दार्थ–हिमभान (सं. हिमभानु) = चन्द्रमा। दोषिवे को = अपराध लगाने को। मोदक = आनन्दित करने को।

अंर्थ–आप जगत् की रचना करने के लिये ब्रह्मा जी के समान, पालन करने के लिये विष्णु भगवान् के समान तथा मारने के लिये शिवजी और मृत्यु के समान एवं जिलाने के लिये अमृतपान के समान हुए। धारण करने के लिये पृथिवी के समान, अन्धकार का नाश करने के लिये सूर्य के समान, शोषण करने के लिये अग्नि के समान और पोषण करने के लिये चन्द्रमा के समान हुए। (आश्रित-विरोधियों को) अपराध लगाने और दु:ख देने के लिये खल के समान, आश्रितों को सन्तुष्ट रखने में सन्त के समान तथा माँगना रूपी मलिनता को आनन्दित करने वाले सुन्दर दान के समान हुए। इस प्रकार दु:खित लोगों की विपत्ति निवारण करने के लिये तीनों लोकों में मुझे तुलसीदास के इष्टदेव हठीले श्रीहनुमान् जी ही हुए।

(१२)

सेवक स्योकाई जानि जानकीस माने कानि,
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को ।
देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ,
बापुरो बराक और राजा-राना राँक को ॥
जागत सोवत बैठे बागद बिनोद मोद,
ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को ।
सब दिन रूरो परैं पूरो जहाँ-तहाँ ताहि,
जाके है भरोसो हिये हनुमान हाँक को ॥

शब्दार्थ-कानि = मर्यादा का ध्यान लिहाज, संकोच। नाक = स्वर्ग। दयावने = ... के योग्य, दीन। बापुरो = तुच्छ, बेचारा। बराक = शोचनीय, नीच, अधम। बागत = चलते हुए। एक आँक = निश्चय करके।

अर्थ-अपने सेवक श्रीहनुमान् जी की सेवा करने वाले को समझ कर जानकीनाथ श्रीरामजी उसका संकोच (दबाव, लिहाज) मानते हैं। शिवजी उससे प्रसन्न रहते है। स्वर्ग के स्वामी इन्द्र भी उससे नम्र हो कर वर्त्ताव करते हैं। देवी, देवता और दानव दीन होकर उससे हाथ जोड़ते हैं। तब बेचारे तुच्छ दूसरे कंगाल राजा-राना किस गिनती में है ? उसके सब दिन अच्छे ही रहते है, जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) उसका पूरा पड़ता है, अर्थात् सर्वत्र उसके सभी कार्य सिद्ध होते हैं जिसके हृदय में श्रीहनुमान् जी के गर्जन का भरोसा रहता है।

(१३)

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
लोकपाल सकल लखन राम जानकी ।
लोक परलोकको बिसोक सो त्रिलोक ताहि,
तुलसी तमाहि कहि कहा बीर आनकी ॥
केसरी किसोर बंदीछोर के निवाजे सब,

कीरति बिमल कपि करुना-निधान की।
बालक ज्यों पालि है कृपालुमुनि सिद्ध ताको,
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की॥

शब्दार्थ-तमाहि (तमअ-अ.) = लोभ-हि. श.सा.। हुलसति = आनन्द देति। कहिं = कहीं भी। कहा = क्या।

अर्थ-(जिसके हृदय में श्रीहनुमान् जी का गर्जन आनन्द देता है, उस पर) अपने अनुचरों और श्रीपार्वती जी के साथ श्रीशिवजी, इन्द्र आदि समस्त लोकपाल श्री लक्ष्मण जी, श्रीराम जी, और श्रीजानकीजी आदि प्रसन्न रहते हैं। वह लोक और परलोक की ओर से शोक रहित है, उसे तीनों लोकों के और वीरों का कहीं भी क्या लोभ (लालसा करने की क्या आवश्यकता) ? (क्योंकि) केसरी के पुत्र श्री हनुमान्जी ने सबको बन्दीखाने से छुड़ाकर उन पर कृपा की है। ऐसी निर्मल कीर्ति करुणासागर श्रीनुमान्जी की है। उसको मुनि और सिद्ध लोग कृपालु होकर बालक की भाँति पालेंगे, जिसके हृदय में श्रीहनुमान् जी का गर्जन आनन्द देता है।

(१४)

करुना निधान, बल-बुद्धि के निधान, मोद-
महिमा-निधान, गुन-ज्ञान के निधान हो।
बामदेव-रूप भूप राम के सनेही, नाम,
लेत देत अर्थ, काम निरवान हौ॥
आपनो प्रभाव लाइ लोक-बेद विधिहू में,
दु:ख के हरइया बिदुष हनुमान हौ।
मन की, बचन की, करम की तिहूँ प्रकार,
तुलसी तिहारो तुम्ह साहिब सुजान हौ॥

अर्थ-हे श्रीहनुमान् जी ! आप करुणा, बल-बुद्धि, मानसिक आनन्द, महिमा और गुण-ज्ञान के आधार एवं सागर है। आप श्री शिवजी के स्वरूप

और महाराजा श्रीरामजी के स्नेही हैं। आप अपने नाम लेते (जपने) वाले को अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष देते हैं। आप लोक और वेदकी विधि में पंडित हैं, उनमें भी अपना प्रभाव लगा-कर उनके द्वारा अपने आश्रितों के दु:खों का हरण करने वाले हैं। मन, बचन और कर्म इन तीनों प्रकार की वृत्तियों से यह तुलसीदास आपका है और आप इसके सुजान (प्रवीण) इष्टदेव है।

अपने अन्न्य भक्तों का पालन भगवान् भी सुजानता से ही करते हैं, यथा- ''अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'' (गीता ९/२२)।

(१५)

मन को अगम, तन सुगम किये कपीस,
काज महाराज के समाज साज साजे हैं।
देव बंदीछोर रन रोर केसरी किसोर,
जुग-जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं॥
बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी की ओर,
सुनि सकुचाने साधु, खल गन गाजे हैं।
बिगरी संवारि अंजनी-कुमार कीजै मोहिं,
जैसे होत आये हनुमान के निवाजे हैं॥

अर्थ-कपीश श्री हनुमान्‌जी ने मन से भी दुर्गम कार्यों को शरीर से सुगमता पूर्वक कर दिये, इस प्रकार महाराजा श्री रामजी के निमित्त उनके समाज के सभी साजों (सामग्रियों को आपने सम्पन्न किया है। हे केसरी किशोर! आप देवताओं को बन्दीखाने से छुड़ाने वाले और रणभूमि में प्रचंड हैं। इन बातों की आपकी विरुदावली जगत् में युग-युग में विराजमान् है। हे वीरों में प्रचंड विक्रम ! आपका बल मुझ तुलसी के पक्ष में कम पड़ गया है-यह सुन कर साधु लोग उदास हो गये और खलों के समूह गर्जते हुए प्रसन्न हो गये हैं। हे अंजनी कुमार ! मेरी बिगड़ी हुई बातों को ठीक करके मुझे भी वैसा ही कीजिये, जैसे कि आप के कृपापात्र होते आये है।

दिये हैं) उन्हें कौन स्थिर बसा सकता है ? हे गरीब निवाज ! आपके कृपापात्र अपने शत्रुओं के हृदय में पीडा रूप होकर विराजते हैं। श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि आपका नाम लेने से समस्त दुःख और शोच (चिन्ता) मकड़ी के जाले के समान (अनायास) फट (निवृत्त हो) जाते हैं। मैं बलिहारी जाता हूँ, क्या आप मेरी ही बार बूढे हो गये, अथवा बहुत से शरणागतों का पालन करते-करते अब थक गये ? (जिससे मेरी पीडा दूर करने में विलम्ब कर रहे हैं)।

(१८)

सिंधु तरे, बडे वीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे।
तैं नर-केहरि केहरिके, बिदले अरिकुंजर छैल छवा से ॥
तो सो समत्थ सुसाहिब सेइ, सहै तुलसी दुख-दोष दवा से।
बानर बाज बढे खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा-से ॥

शब्दार्थ-मवासे = किले, गढ। रन केहरि (रण केसरी) = युद्ध में सिंहवत पराक्रमी। केहरि-के = केसरी के पुत्र। बिदले = विशेष रूप से मर्दन किया। छैल = युवा, जवान। छवा = किसी पशु का बच्चा। दवा = दावानल, बनाग्नि। खेचर = नभचर। लवा = बटेर पक्षी।

अर्थ-आप ने समुद्र का उल्लंघन किया, बडे-बडे दुष्ट (राक्षस) योद्धाओं का संहार किया और लंका सरीखे विकट किले को जला डाला हे केसरी नामक वानर के पुत्र ! आप रण में सिंह के समान पराक्रमी है, इसी से आप ने जवान हाथियों के समान शत्रुओं का सामान्य पशुओं के बच्चों के समान मानकर विशेष रूप से मर्दन किया है। आप ऐसे समर्थ और अच्छे स्वामी की सेवा करता हुआ यह तुलसीदास दुःख और दोष रूपी दावाग्नि का सहन करे ! (यह आपको शोभा नहीं देता)। अतः, हे वानर रूपी बाज ! बहुत से दुष्ट रूपी पक्षी बढ गये हैं, आप उन्हें बटेर की भाँति क्यों नहीं लपेट लेते ?

(१९)

अच्छ बिर्दन कानन भानि दसानन आनन भाननिहारो।
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरिवारो ॥

राम-प्रताप हुतासन कच्छ बिपच्छ समीर समीर-दुलारो ।
पाप ते, साप ते, ताप तिहूँ ते सदा तुलसी कहँ सो रखवारो ।।

शब्दार्थ-कच्छ = तुम संज्ञक एक वृक्ष विशेष, यथा-'तुन्नः कुबेरकः ।। कुणिः कच्छः कान्तलको नन्दिवृक्षो (थ) राक्षसी ।...' (अमर कोष), अर्थात् तुन्न, कुबेरक, कुणि, तुणि कच्छ कान्तलक 'नन्दिवृक्ष' ये ६ तुन या 'नंदीवृक्ष' या पीपल पत्र के समान पत्तेवाले वृक्ष के नाम है । श्रीवैजनाथ जी लिखते हैं कि यह गीला ही सूखे की भाँति जलता है । विपच्छ = शत्रु प्रतिकूल, अप्रसन्न, हि.श.सा. ।

अर्थ-हे अक्षकुमार का बध करने वाले श्रीहनुमान् जी ! आप अशोक वन का बिध्वंस कर रावण के मुखों का भंजन करने वाले हैं। मेघनाद अकंपन और कुम्भकर्ण सरीखे हाथियों के (मान मर्दन करने के) लिये सिंह-किशोर हैं। शत्रु रूपी कच्छ वृक्ष के लिये श्रीराम जी का प्रताप अग्नि के समान है, उसके बढ़ाने के लिये, हे पवन कुमार ! आप पवन रूप हैं। वे ही श्रीहनुमान् जी ! आप मुझ तुलसीदास को सदा पाप, शाप और तीनों तापों से रक्षक हैं।

विशेष-'अच्छ बिमर्दन..'-अक्षकुमार का महान् पराक्रम वाल्मी. ५/४७/१-३८ में कहा गया है । उसका संहार करनेवाला कहने से श्रीहनुमान् जी का उससे भी कहीं अधिक पराक्रम प्रकट किया गया ।

घनाक्षरी (२०)

जानत जहान जन हनुमान को निवाज्यो,
मन अनुमानि, बलि, बोलि न बिसारिये ।
सेवा-जोग 'तुलसी' कबहुँ कहूँ चूक परी,
साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिये ।।
अपराधी जानि कीजै साँसति सहस भाँति,
मोदक मरे जो ताहि माहुर न मारिये ।
साहसी समीर-के दुलारे रघुबीर जू के,
बाँह पीर महाबीर बेगि ही निबारिये ।।

शब्दार्थ-जन = श्री तुलसीदास जी। बोलि (बाँह बोलि) = रक्षा करने या सहायता देने का बचन देकर-हि.श.सा.। कपि-साहेब = कपियों के स्वामी।

अर्थ-हे श्री हनुमान्जी जी ! संसार जानता है कि यह सेवक तुलसीदास श्रीहनुमान् जी (आप) का कृपा पात्र है-ऐसा मन में विचार कर, मैं बलिहारी जाता हूँ, रक्षा करने का वचन देकर, अब इसे भुलाइये नहीं (अन्यथा संसार में आपका अपयश होगा कि आश्रित को रक्षा करने का बचन देकर उसे भुला देते हैं, अपनी की हुई प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं करते,)। सेवा के संयोग मैं सम्भव है कि कभी कहीं पर इस तुलसीदास से चूक हो गई होगी, इस पर, हे कपियों के स्वामी ! अपने स्वामित्व के स्वभाव का स्मरण कीजिये। अपराधी जान कर सहस्त्रों प्रकार से मेरी दुर्दशा कीजिये, परन्तु 'जो लड्डू देने से मरता हो उसे विष देकर न मारिये।' (इस कहावत पर ध्यान दीजिये) हे महा पराक्रमी ! हे पवनदेव के दुलारे पुत्र !! हे रघुबीर के प्यारे !!! और हे महाबीर !!! मेरी बाँहु-पीड़ाका शीघ्र निवारण कीजिये।

(२१)

बालक बिलोकि, बलि, बारे ते आपनो कियो,
दीन बंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसी के, रावरोई बल,
आस रावरीये, दास रावरो बिचारिये।
बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो,
माथे पगु बली को, निहारि सो निवारिये।
केसरी-किसोर, रन रोर बरजोर बीर,
बाहु पीर राहु-मातु ज्यों पछारि मारिये॥

शब्दार्थ-निरुपाधि = धर्म-चिन्ता-रहित, यथा-'उपाधि (र्ना) धर्मचिन्ता।' (अमर कोष) अर्थात् उपाधि और धर्मचिन्ता ये धर्म-विचार के नाम है। न्यारिये = निराली ही, लोकोत्तर। राहुमातु = सिंहिका। पछारि-पटक कर।

अर्थ-हे दीनबन्धु श्रीहनुमान् जी ! मैं बलिहारी जाता हूँ। आप ने मुझे

पुत्र दृष्टि से देखकर बचपन से ही अपनाया है और मुझ पर निराली दया की है, जिससे मुझे अन्य धर्मों की चिन्ता (परवाह) नहीं रह गई। मुझ तुलसीदास को आपका ही भरोसा, आप का ही बल और आप की ही आशा है, इस प्रकार मैं आपका ही (अनन्य) दास हूँ ऐसा समझिये। कलिकाल बड़ा भयंकर है, इसने किसको विह्वल नहीं कर दिया, इस बलबान् (शत्रु) का पैर मेरे शिर पर है, अर्थात् यह मुझे कुचल डालना चाहता है। ऐसा देखकर इसका निवारण कीजिये। हे केसरी वानर के पुत्र ! आप युद्ध में प्रचंड और उत्तम बली (जबरदस्त) बीर हैं। अत: मेरी बाहुपीड़ा को सिंहिका राक्षसीकी भाँति पटक कर (अति शीघ्र) मार डालिये।

(२२)

उथपे थपन थिर थपे उथपन हार,
केसरी–कुमार बल आपनो सँभारये।
राम के गुलामनि को कामतरु राम दूत,
मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिये ॥
साहेब समर्थ तोसो तुलसी के माथे पर,
सोऊ अपराध बिनु बीर बाँधि मारिये।
पोखरी बिसाल बाँह बलि–बारिचर पीर,
मकरी ज्यों पकरि के बदन बिदारिये ॥

शब्दार्थ–तकिया = आश्रम, सहारा, आसरा–हि.श.सा.।

अर्थ–आप भय से भागे (उजड़े) हुए (सुग्रीव जी और विभीषण जी आदि को बसाने वाले और स्थिर बसे हुए (वाली और रावण आदि को उजाड़ने वाले हैं। हे केसरी कुमार ! आप अपने उस बल का स्मरण कीजिये। हे रामदूत श्री हनुमान जी ! आप श्री रामजी के सेवकों के लिये कल्पवृक्ष हैं, मुझ ऐसे दीनों एवं दुर्बलों को तो आप का ही सहारा है। हे वीर ! आप सरीखे समर्थ स्वामी जिस तुलसीदास के शिर पर उपस्थित हैं, वह भी बिना अपराध के ही बाँध कर मारा जाता है। मैं बलिहारी जाता हूँ, मेरी भुजा विशाल (लंबी–चौड़ी पोखरी

के समान है और यह पीडा उस जल में रहने वाली मकरी के समान है। उस मकरी के समान इस पीडा को पकड़ कर इसका मुख फाड डालिये।

(२३)

राम को सनेह राम, साहस लखन, सिय,
राम की भगति, सोच संकट निवारिये।
मुद-मरकट रोग-बारिनिधि हेरि हारे,
जीव-जामवंत को भरोसो तेरो भारिये॥
कूदिये कृपाल तुलसी सुप्रेम-पब्बय ते,
सुथल सुबेल भाल बैठि कै बिचारिये।
महाबीर बाँकुरे बराकी बाहु-पीर क्यों न,
लंकिनी ज्यों लात-घात ही मरोरि मारिये॥

अर्थ-मेरे हृदय में जो श्रीरामजी का स्नेह है, वह श्री रामजी है। परमार्थ साधन का जो साहस है, वह श्री लक्ष्मण जी हैं और मेरे हृदय में जो श्री रामजी की भक्ति है, वह श्री सीता जी हैं-इनके सोच (चिन्ता) और दु:ख का निवारण कीजिये। मेरे मानसिक आनन्द रूप बानर गण इस रोग रूपी (भयंकर) समुद्र को देख कर (पार जाने में) हार माने हुए हैं। किन्तु मेरे जीवात्मा रूपी जाम्बवान् को आप का भारी भरोसा है। अतएव, हे कृपाल ! आप मुझ तुलसीदास के सुन्दर प्रेम रूपी पर्वत से कूदिये और सुन्दर स्थल रूपी सुबेल पर्वत की भाँति मेरे भाग्य स्थल रूपी मस्तक पर बैठ कर विचार कीजिये। पुन: हे चतुर महाबीर! इस तुच्छ वाहु-पीड़ा को लंकिनी की भाँति पैर के प्रहार से और मरोड़कर क्यों नहीं मारे डालते ?

(२४)

लोक परलोक हूँ तिलोक न बिलोकियत,
तोसों समरत्थ चख चारिहूँ निहारिये।
कर्म काल लोकपाल अग जग जीव जाल,
नाथ हाथ सब निज महिमा बिचारिये॥

खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर,
तुलसी सो देव दुखी देखियत भारिये।
बाहुँ तरु मूल बाहु-सूल कपि कच्छु बेलि,
उपजी सकेलि कपि केलि ही उखारिये।

अमर कोष में केवाँच के नव नाम हैं, उनमें 'कपिकच्छु' भी एक है। केवाँच की लता के छू जाने से देह खुजलाती है, इससे वानर उसे उपजते ही जहाँ पाते हैं-उखाड़ डालते हैं। सकेलि = बटोर कर।

अर्थ-हे श्री हनुमान् जी! तीनों लोकों में लौकिक और पार-लौकिक सुख देने में आपके समान समर्थ कोई नहीं देख पड़ता, यह मैने अपनी चारो आखों से देखकर निश्चय कर लिया है (दो नेत्र बाहर के और बुद्धि तथा चित्त-ये चार नेत्र कहे जाते हैं)। संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण-कर्म, लग्न, मुहूर्त्त, तिथि, बार, नक्षत्र आदि काल, इन्द्र आदि लोकपाल (पद ४ के विशेष में आठो लोकपालों के नाम लिखे गये हैं) और स्थावर, जंगम के रूप में समूह जीव वर्ग, हे नाथ! ये सब आपके ही हाथों में है, अर्थात् इनकी स्थिति प्रवृत्ति आप के अधीन है, अपनी इस महिमा को विचारिये। यह तुलसीदास आपका अनन्य सेवक है और इसके हृदय में आपका निवास है फिर भी, हे देव! यह भारी दुःखी देखा जाता है। मेरी बाहु रूपी वृक्ष के मूल भाग में बाहु-पीड़ा रूपी केवाँच की लता उत्पन्न हुई है, इसे बटोर कर कपि-क्रीड़ा के रूप में उखाड़ डालिये।

(२५)

करम कराल कंस भूमिपाल के भरोसे,
बकी बक भगिनी काहू ते कहा डरैगी।
बड़ी विकराल बालघातिनी न जात कहि,
बाहु-बल बालक छबीले छोटे छरैगी।।
आई है बनाइ बेष आप तू बिचारि देख,
पाप जाय सब को गुनी के पाले परैगी।

पूतना पिसाचिनी ज्यों कपि कान्ह 'तुलसी' की,
बाहु-पीर, महाबीर, तेरे मारे मरैगी ।।

शब्दार्थ-वकी = बकासुर की बहन, पूतना। छरैगी = छलैगी, छल करके मारेगी। कान्ह = श्रीकृष्णजी, यहाँ कृष्ण के शिशु रूप से तात्पर्य है, जिस पर पूतना की बाधा हुई थी।

अर्थ-कर्म रूपी भयंकर कंस राजा के भरोसे बकासुर की बहन पूतना क्या किसी से डरेगी ? यह बालकों को मारने वाली बड़ी भयंकर है, इसकी भयंकरता कहीं नहीं जाती। यह मेरे बाहु के बल रूपी अत्यन्त सुन्दर छोटे बालक को छल करके मारेगी। यह सुन्दर वेष बनाकर आई है, आप स्वयं इसे विचार कर देखे (अर्थात् इसे दंड दें) जब यह (आप ऐसे) गुणी (झाड़ फूंक करने वाले, ओझा) के पाले (वश में) पड़ेगी तब सब (अंगों) का दुःख दूर होगा। तुलसीदास की बाहु-पीड़ा पूतना पिशाचिनी के समान है और, हे कपि श्री हनुमान्जी ! आप बालकृष्ण रूप हैं। अतः हे महाबीर ! यह (बाहु-पीड़ा) आपके ही मारने से मरेगी।

(२६)

भाल की कि काल की कि रोष की त्रिदोष की है,
बेदन विषम पाप-ताप छल छाँह की।
करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की,
पराहि जाहि पापिनी मलीन मन माँह की ।।
पैहहि सजाय, नत कहत बजाय तोहिं,
बाबरी न होहिं बानि जानि कपि नाँह की।
आन हनुमान की, दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की ।।

शब्दार्थ-आन, दोहाई और शपथ पर्यायी हैं, शोक की विह्वलता में कई बार आये हैं-इसमें वीप्सा अलंकार है। काल = कुसमय। रोग = प्रेत आदि का क्रोध। छाँह (छाया) = भूत का प्रभाव-हिं.श.सा.। करमन (कार्मण) = उच्चाटन। कूट = माया। बूट = बूट, जड़ी-बूटी। पापिनी = हिंसा वृत्ति वाली। बजाय = प्रचार कर।

अर्थ–यह बिषम–पीडा ललाट पर की कुत्सित लिखावट है, या कुसमय की बाधा है, या किसी कराल प्राणी के क्रोध का परिणाम है, या सन्निपात का प्रकोप है,या अपने पाप के फल रूप में दु:ख (देहिक ताप) है, अथवा किसी भूत आदि के छल का प्रभाव है। और अथवा यह बाधा किसी के द्वारा किये हुए उच्चाटन आदि छल का प्रतिफल है, या किसी के द्वारा किये हुए और यंत्र, मंत्र तथा जड़ी–बूटी की बाधा है। अरी ! मन में हिंसा वृत्ति रूपी मलिनता रखने वाली पापिनी बाहु–पीड़ा अब तू भाग जा। नहीं तो मैं प्रचार कर तुझसे कहता हूँ, तू दंड पायेगी कपीश्वर श्रीहनुमान् जी का स्वभाव जानकर भी पगली मत बन (वे पापिनी स्त्री को भी नहीं छोड़ते, सिंहिका आदि के बध से तथा लंकिनी के दंड से स्पष्ट है)। ऐ बाहुपीड़ा ! यदि तू रहे तो तुझे श्रीहनुमान्जी की आन है। उन बलवान् की दोहाई है और उन महाबीर जी की शपथ है।

(२७)

सिंहिका संघारि, बलि, सुरसा सुधारि छल,
लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है।
लंक परजारि मकरी बिदारि बार–बार,
जातुधान धारि धूरि–धानी करि डारी है॥
तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी,
रावन की रानी मेघनाद महतारी है।
भीर बाँह–पीर की निपट राखी महाबीर,
कौन के सँकोच तुलसी के सोच भारी है॥

शब्दार्थ–परजारि = अच्छी तरह जलाकर। धूरिधारी = धूल की राशि ध्वंस, विनाश। जम कातरि (यम–कातर) = १. यम का छूरा या खाँड़ा, २. एक प्रकार की तलवार। हि.श.सा.। कढ़ोरना = घसीटना। भीर = दु:ख, आफत विपत्ति।

अर्थ–मैं बलिहारी जाता हूँ हे श्रीहनुमान् जी ! आपने सिंहिका राक्षसी का संहार करके सुरसा के छल का संशोधन कर और फिर लंकिनी को पटक कर आघात पहुँचा, अशोक वाटिका को उजाड़ डाला है। लंकापुरी को भली–

भाँति जला करके मकरी को विदीर्ण कर, फिर राक्षसों की सेना बार बार धूल की राशि के समान (अर्थात् उन्हें चूर्ण करके उनका विध्वंस) किया है। आप यमराज की तलवार के समान विकट शस्त्रास्त्राधारी सेना को तोड़कर रावण के घर से मंदोदरी को घसीट लाये, जो रावण की पटरानी और मेघनाद की माता थी। हे महाबीर ! आप ने न जाने किसके संकोच में पड़कर मेरी बाहु-पीड़ा के दु:ख को नितान्त (बिल्कुल) रख छोड़ा है, तुलसीदास के हृदय में इसी बात का भारी सोच है।

(२८)

तेरी बाल बेलि, वीर ! सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीर-सुधि सक्र रबि राहु की।
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,
तेरो नाम लेत रहै आरतिं न काहु की ॥
साम दाम भेद विधि, बेदहु लबेद सिधि,
हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की।
आलस अंनख परिहास की सिखावन है,
एते दिन रही पीर 'तुलसी' के बाहु की ॥

अर्थ-हे बीर ! आपकी बाल-लीला सुनकर धैर्यवान लोग भी डर जाते हैं और इन्द्र, सूर्य और राहु को अपने-अपने शरीरों की सुध भूल जाती है। आपके बाहु-बल के भरोसे इन्द्र आदि समस्त लोक पाल शोक-रहित होकर निवास करते हैं। आपका नाम लेने से किसी की भी विपत्ति नहीं रह जाती। साम (मैत्री), दाम (धन देकर शत्रु को मिलाना), मेद (शत्रुपक्ष के विशिष्ट व्यक्तियों को अपने पक्ष में मिलाना), इन तीनों नीतियों की विधियाँ, हे कपिनाथ ! आपके ही हाथों में है, यह वेदों से सिद्ध है और लबेद (लोक) में भी ऐसी कहावत है-''चोर की चोटी साहु के हाथ''। तुलसीदास की बाहु-पीड़ा जो इतने दिनों से रह आई, यह क्या आपका आलस्य है, क्रोध है, परिहास है अथवा मुझे शिक्षा है ?

टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल बोलि,
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है।
कीन्हीं है सँभार-सार अंजनीकुमार वीर,
आपनो बिसारि है न मेरेहू भरोसो है ॥
इतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु,
कपिनाथ साँची कहौं को त्रिलोक तोसों है।
साँसति सहत दास कीजै पेखि परिहास
चिरी को मरन खेल बालकनि को-सो है ॥

शब्दार्थ-पेखि = तमाशा देखकर। चिरी = चिड़िया। परेखो = परीक्षा, अवसेर करना बिलम्ब करना।

अर्थ-हे शरणागतों का पालन करने वाले ! हे कृपालो ! टुकड़ों के लिये घर-घर फिरते हुए मुझ दरिद्र को बुलाकर बालक के समान पालकर आपने पुष्ट एवं बड़ा किया है। हे अंजनीकुमार ! हे बीर ! आप ने मेरी सार-सँभार किया है, इस प्रकार जो आप ने मुझे अपनाया है तो अब बिसारेंगे नहीं-ऐसा मेरे हृदय में भी भरोसा है। हे कपिराज ! आप आज सब प्रकार समर्थ है, आप के समान तीनों लोकों में कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है-यह मैं सत्य ही कहता हूँ, फिर भी आप मेरा कष्ट-हरण करने में इतना बिलम्ब कर रहे हैं। यह सेवक दुर्दशा सह रहा है और आप कौतुक देखकर हँसी कर रहे हैं, यह तो वैसा ही है कि-'चिड़िये का मरण हो और बालकों का खेल।'

(३०)

आपने ही पाप ते त्रिताप ते कि साप ते,
बढ़ी है बाँह-बेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है ॥

करतार भरतार हरतार कर्म काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत,
ढील तेरी बीर ! मोहिं पीर ते पिराति है।

अर्थ-मेरे अपने ही पापों से, या दैहिक, दैविक एवं भौतिक इन तीनों तापों से, अथवा किसी के शाप से यह बाहु-पीड़ा बड़ी हुई है। यह न कही जाती है और न सही जाती है। इसको निवृत्त करने के लिये अनेक औषधियाँ और यन्त्र, मन्त्र सथा टोटका आदि भी किये गये, किन्तु सब उपाय व्यर्थ हो गये। देवताओं को मनाने से तो यह और भी अधिक होती है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव, कर्म एवं काल तथा और भी जगत समूह में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा को न मानता हो ? हे रामदूत। यह तुलसीदास आपकी ही सेवक है और आप ने भी कहा है कि 'तू मेरा हे'। परन्तु, हे वीर ! आप की यह शिथिलता (सुस्ती) मुझे इस बाहु-पीड़ा से भी अधिक पीड़ा दे रही है।

(३१)

दूत राम राय को, सपूत पूत बाय को,
समत्थ हाथ-पाय को सहाय असहाय को।
बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत,
रावन सो भट भयो मुठिका के घाय को ।।
एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु,
सीदत सुसेवक बचन मन काय को ।
थोरी बाहुपीर की बड़ी गलानि 'तुलसी' को,
कौन पाप कोप, लोप प्रगट प्रभाय को ।।

अर्थ-हे श्री हनूमान् जी ! आप महाराज श्री रामचन्द्र जी के दूत और श्री पवनदेव के सत्पुत्र हैं। आप स्वयं हाथ-पाँव के सामर्थ्यवान् हैं और (उन हाथों-पावों से) निराश्रितों की सहायता करने वाले हैं। आपके सुन्दर यश की पंक्तियाँ (लोक में) प्रसिद्ध हैं और वेद भी उनका गान करते हैं। रावण सरीखा

योद्धा आपके एक मुष्टिका की चोट भर को हुआ, अर्थात् एक ही मुक्के से घायल होकर गिर पड़ा और मूच्छित हो गया। इतने बड़े समर्थ स्वामी का कृपापात्र उत्तम (अनन्य) मन, बचन और कर्म का सेवक (तुलसीदास) दुःख पा रहा है, तुलसीदास को बाहु-पीड़ा की तो थोड़ी ही ग्लानि है, किन्तु इस बात की बड़ी ग्लानि है कि मेरे किस पाप के प्रकोप से आपके प्रत्यक्ष प्रभाव का अदर्शन (अभाव) हो रहा है ?

(३२)

देवी-देव दनुज-मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे-बड़े जीव जेते चेतन-अचेत हैं।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम,
राम-दूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं॥
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग रोग,
हनूमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं।
क्रोध कीजै कर्म को, प्रबोध कीजै 'तुलसी' को,
सोध कीजै तिन्हको जो दोष-दुःख देत हैं॥

शब्दार्थ-पूतना = एक प्रकार का बाल-ग्रह या बाल-रोग। पिसाची (पिशाच-पिशाची) = एक हीन देव योनि, भूत। रजाइ = आज्ञा। कूट-धोखा, जादू-टोना। सोध = ठीक करना, सुधारना। प्रबोध = ढारस, आश्वासन, सान्त्वना हि.श.सा.।

अर्थ-देवी, देवता, दैत्य, मनुष्य, मुनि, सिद्ध, नाग और जितने भी छोटे बडे जड-चेतन जीव वर्ग हैं। तथा पूतना, पिशाची, राक्षसी, राक्षस एवं और भी जो प्रतिकूल वर्ग हैं, वे सब श्रीराम जी के दूत श्रीहनुमान् जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर लेते हैं। महा भयंकर यंत्र, मंत्र, जादू-टोना, कपट, कुत्सित योग और रोग-ये सब श्रीहनुमान् जी की शपथ (दोहाई) सुनकर स्थान छोड़ देते हैं। हे श्रीहनुमान् जी ! मेरे कुत्सित कर्मों पर क्रोध कीजिये और मेरे उन दोषों का सुधार कीजिये जो मुझे दुःख देते हैं-इस प्रकार इस तुलसीदास को प्रबोध (ढारस सान्तवना) कीजिये।

(३३)

तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों,
तेरे घाले ज़ातुधान भये घर-घर के ।
तेरे बल राम राम किये सब सुर काज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के ॥
तेरे गुन गान सुनि गीरवान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि-हर के ।
तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ,
बूझिये न दास दुखी तोसे कनिगर के ॥

शब्दार्थ-घाले = मारने से । गीरवान (गीर्वाण) = देवता । कनिगर = अपनी मर्य्यादा का ध्यान रखने वाला ।

अर्थ-आपके बल ने युद्ध में वानरों को रावण से जिताया है, आपके मारने से राक्षस गण घर-घर के हुए, अर्थात् युद्ध के शूर बीर मैदान छोड़कर घर-घर में जा छिपे । अथवा, घर-घर के हुए अर्थात् तितर-बितर हो गये-ऐसा मुहावरा है । आप के ही बल से महाराज श्रीरामचन्द्र जी ने समस्त देवताओं के सभी कार्य किये हैं । आपने ही श्री रघुनाथजी के समस्त समाज के सभी साज सजाये हैं । आपके गुणों का गान सुन कर देवगण पुलकित होते हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जी के नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर आते हैं । हे कपिराज ! इस तुलसीदास के शिर पर हाथ फेर दीजिये, क्योंकि आप-सरीखे अपनी प्रतिष्ठा पर ध्यान रखने वालों के सेवक को दुःखी नहीं रहना चाहिये ।

(३४)

पाल्यो तेरे टूक को परे हू चूक मूकिये न,
कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिये ।
भोरानाथ भोरे हो, सरोष होत थोरे दोष,
पोषि-तोषि थापि आपनो न अवडेरिये ॥

अंबु तू हौं अंबुचर अंब तू हौं डिंभ, सो न,
बूझिये बिलंब अबलंब मेरे तेरिये ।
बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि,
'तुलसी' की बाँह पर लाँबी लूम फेरिये ॥

शब्दार्थ–मूकना (सं. मुक्त) = दूर करना, त्याग करना। अवडेरना = झंझट में फँसाना, दुःखी करना, यथा–''पुनि अवडेरि मरायन ताही।'' (मा.बा. ७८)। डिंभ = बच्चा। कूर = मूर्ख, निकमा।

अर्थ–हे श्रीहनुमान् जी ! मैं आप के टुकड़ों से पला हूँ। अतः, मुझसे चूक हो जाने पर भी मेरा त्याग न कीजिये, यद्यपि मैं निकम्मा दो कौड़ी का हूँ, तथापि आप अपनी ही ओर देखिये (अतः अपने उत्तम स्वामि स्वभाव से मेरा पालन ही कीजिये)। हे भोलानाथ ! आप भोले–भाले स्वभाव के है, इसी से थोड़े दोष पर भी रुष्ट हो जाते है। आपने मेरा पोषण किया है मुझे सब प्रकार से सन्तुष्ट किया है और फिर स्थिर स्थापित किया है, इस प्रकार मुझे अपना कर अब दुःखी न कीजिये। आप जल हैं तो मैं जलचर हूँ, आप माँ हैं तो मैं बच्चा हूँ, ऐसे मुझ आश्रित पर विलम्ब न करना चाहिये, क्योंकि मेरे (हृदय में) केवल आपका ही सहारा है। मुझ बालक को व्याकुल जानकर और मेरे प्रेम को पहचान कर, मुझ तुलसीदास की बाँह पर अपनी लम्बी पूँछ फिरा दीजिये (जिससे पीड़ा दूर हो जाय)।

(३५)

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों,
बासर सजल घनघटा धुकि धाई है।
बरषत बारि पीर जारिये जवासे ज्यों,
सरोष बिनु दोष, धूम मूल मलिनाई है ॥
करुना–निधान हनुमान महा बलवान,
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजें तैं उड़ाई है।

खाये हुये 'तुलसी' कुरोग राड़ राकसनि,
केसरी-किसोर राखे बीर बरियाई है ।

शब्दार्थ-धुकि = चपलता से, यथा-''कपि यों धुकि धायो।'' (क.लं. ५४), ''गीध धुकि धायो।'' (गी. अर. ७)। राड़ = नीच, निकम्मा, कायर, भगोड़ा। यथा-''गज गुन मोल अहार बल, महिमा जान कि राड़ ॥'' (दोहावली ३८०), ''राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझों।'' (वि. १७६)। राकसनि = राक्षसों ने। मलिनाई = पाप।

अर्थ-मुझे रोगों ने, कुत्सित लोगों ने और विषम-स्थान की ग्रहदशाओं के द्वारा कुत्सित योगों ने इस प्रकार घेर लिये हैं कि जैसे दिन में जलपूर्ण मेघों की घटायें चपलता से दौड़ कर घेर लेती हैं। पीड़ारूपी जलकी वर्षा हो रही है, इससे मैं जवासे की भाँति जलाया जाता हूँ। ये सब बिना अपराध के ही मुझ पर क्रुद्ध हैं। घटा वाले मेघों के कारण धूम (भाप) है, वैसे ही मेरे रोग आदि के कारण मेरे पाप है। हे करुणा सागर और महा बलवान् श्री हनुमान् जी! आप ने हँस कर मेरी ओर देखा और ललकार कर एवं फूँकर (अर्थात् फूँक रूपी वायु के द्वारा) उन घटा रूपी रोग आदि फौजों (सेनाओं) को उड़ा दिया। मुझ तुलसी दास को तो इन कुत्सित रोग रूपी नीच राक्षसों ने खा लिया होता, परन्तु, हे केसरी किशोर! हे बीर!! आप ने अपनी बरियाई से (= वल पूर्वक) मुझे रख लिया, अर्थात् आपने अपनी प्रबलता से मेरी रक्षा की है।

सवैया (मतगयंद) (३६)

राम-गुलाम तुही हनुमान गुसाइँ सुसाइँ सदा अनुकूलो।
पाल्यो हौं बाल ज्यों आखर दू पितु-मातु ज्यों मंगल-मोद समूलो॥
बाँह की बेदन बाँह-पगार पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्री रघुबीर निवारिये पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो॥

शब्दार्थ-गोसांई = इन्द्रियों के स्वामी, इन्द्रियजित्, मालिक। बाँहपगार = 'पगार' शब्द संस्कृत के 'प्राकार' का विकृत रूप है। इसका अर्थ है, परकोटा, घेरा। इस दृष्टि से 'बाँह पगार' इसका अर्थ होगा-बाहुओं के परकोटा वाले = वाहुओं के द्वारा आश्रित की सब ओर से रक्षा करने वाले।

अर्थ–हे श्री हनुमान् जी ! श्रीराम जी के सेवक एक आप ही हैं, आप मेरे संदा अनुकूल रहने वाले इन्द्रियजित् और अच्छे स्वामी है। पिता माता के समान, मंगल और मोद (मानसिक आनंद) के उत्तम कारण रूप रकार मकार है, इन दोनों अक्षरों ने बालक के समान मेरा पालन किया है। हे भुजाओं के द्वारा आश्रित की सब ओर से रक्षा करने वाले ! बाहु की पीड़ा से मैं आनन्द को भूल गया हूँ और आर्त्त होकर आप से पुकार कर रहा हूँ। हे रघुवीर श्रीरामजी ! मेरी इस पीड़ा को दूर कीजिये, दुर्बल और लूला होकर भी मैं आप के दरबार में पड़ा हूँ।

(३७)

काल की करालता करम कठिनाई की धौ,
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।
बेदन कुभांति सो सही न जाति राति–दिन
सोई बाँह गही जो गही समीर–डावरे ॥
लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि,
सींचिये मलीन भो तयो है तिहुँ तावरे।
भूतन की आपनी पराई है कृपानिधान,
जानियत सब ही की रीति राम रावरे ॥

शब्दार्थ–डावरे (डावरा) = पुत्र, लड़का–हि.श. सा.।

अर्थ–न जाने काल एवं कलिकाल की भयानकता है, या कर्मों की कठिनता है, या पाप का प्रभाव है या कि प्रमत्त (प्रकुपित) वायु की स्वाभाविक वृत्ति (पीड़ा) है। रातो दिन कुभाति की पीड़ा हो रही है यह सही नहीं जाती। वही बाँह पकड़ी हुई (बात ग्रस्त) है जिसे, हे पवन पुत्र ! आपने ग्रहण कर मुझे अपनाया है। यह तुलसी वृक्ष रूपी तुलसीदास आपका ही लगाया हुआ है। अब यह तीनों तापों से तप (झुलस) कर मलिन हो गया है, अर्थात् मुरझा गया

है। अतः इसकी ओर देखकर इसे कृपा रूपी जल से सींचिये। हे कृपा निधान श्रीराम जी! यह पीड़ा भूतों की दी हुई है, या अपने ही कर्मों की फल भोग रूपा है और या कि यह किसी शत्रु आदि के द्वारा किये हुए किसी प्रयोग आदि से है, इसे आपही जानते हैं क्योंकि आप सभी की सभी रीतियों के जानने वाले हैं।

(३८)

पाँय पीर, पेट-पीर, बाँह-पीर, मुख-पीर,
जर-जर सकल सरीर पीर मई है।
देव-भूत, पितर, करम, खल-काल-ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक-सी दई है॥
हौं तो बिनु मोल ही बिकानो, बलि, बारे हीते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय, राम राय! ऐसी हाल कहूँ भई है?

शब्दार्थ-जरजर (जर्जर) = जीर्ण, जो पुराना होने के कारण व्यर्थ हो गया हो, बुड्ढा, टूटा फूटा, खंडित-हि.श.सा.। दमानक = तोपों की बाढ़ हि.श.सा.।

अर्थ-पाँव की पीड़ा, पेट की पीड़ा बाहु की पीड़ा और मुख की पीड़ा से सारी देह पीड़ा मय होकर जर्जर हो गई है। ग्राम-देवता भैरव आदि भूत, पितृगण, कर्म, दुष्ट काल और दुष्ट ग्रह-इन सब ने मुझ पर धावा करके तोपों की बाढ़-सी लगा दी है। मैं बलिहारी जाता हूँ, मैं तो बचपन से ही आपके हाथों बिना मूल्य काही बिक गया हूँ और अपने ललाट पर श्रीराम नाम की ओट (शरण) लिख ली है। समुद्र सोखने वाले अगस्त्य जी के सेवक गाय के खुरीर जल में व्याकुल होकर डूबे, हा! महाराज श्रीराम जी! क्या ऐसी दशा भी कहीं हुई है?

(३९)

बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि,
मुंह पीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं ।
राम-नाम जप जाग कियो चहौं सानुराग,
काल कैसे दूत भूत कहा मेरे मान हैं ॥
सुमिरे सहाय राम-लखन आखर दोऊ,
जिन्ह के समूह साके जागत जहान हैं ।
तुलसी सँभारि ताड़का सँधारि भारी भट,
बेधे बरगद से बनाइ बान-बान हैं ॥

शब्दार्थ-बाहुक = बाहु पीड़ा। लीचर = सुस्त, निकम्मा, मान = सामर्थ्य, शक्ति, वश, काबू। केतुजा = ताटका।

अर्थ-नीच सुबाहु और निकम्मा मारीच दोनों मिलकर बाहु-पीड़ा रूप हैं। ताटका मुख-पीड़ा रूप और अनेक कुत्सित रोग उनकी सेना के राक्षस रूप है। मैं अनुराग पूर्वक श्रीराम-नाम का जप रूपी यज्ञ करना चाहता हूँ। परन्तु कालदूत के समान ये भूत क्या मेरे वश (काबू) के है ? (कभी नहीं)। जिनकी समूह कीर्ति संसार में प्रसिद्ध है उन श्रीराम नाम के दोनों अक्षर श्रीराम लक्ष्मण के समान सहायक हुए। इन दोनों अक्षरों ने मुझ तुलसीदास का संभाल किया (वह इस प्रकार कि) पहले मुख पीड़ा रूपी ताटका को संहार किया और फिर बाहुक एवं कुरोग रूपी उपरोक्त भारी-भारी भटों को 'बानो-बानों' से इस प्रकार बनाकर बेध दिया है कि जैसे बरगद (बट)।

(४०)

बालपने सूधे मन राम-सनमुख भयो
रामनाम लेत माँगि खात टूक-टाक हौं ।

परयो लोक–रीत में, पुनीत प्रीति राम–राय,
मोह बस बैठों तोरि तरक तराक हौं ॥
खोटे–खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनीकुमार सोध्यो राम–पानि पाक हौं।
'तुलसी' गोसाई भयो भोंड़े दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥

शब्दार्थ–टूक–टाट माँगि = मधुकरी वृत्ति से जो साधु साधुओं के यहाँ से तथा वैष्णव सद्गृहस्थों के यहाँ से सिद्धान्न (रोटी–भात आदि) माँग कर भोजन करते हैं, उसे मधुकरी वृत्ति कहते हैं। श्री गोस्वामी जी ने वह वृत्ति भी की थी, यथा–''माँगि मधुकरी खात से, सोवत गोड़ पसारि। पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि ॥'' (दोहावली ४९४)। तरकि = अनुमान करके। तराक (तड़ाक = अत्यन्त शीघ्र, (तड़ाक–पड़ाक = चट–पट)। सोध्यों = शुद्ध किया गया। भोरे (भोड़े) = खोटे।

अर्थ–में बचपन से ही सीधे मन (सरल–स्वभाव) से श्रीराम जी के सम्मुख हुआ और श्रीराम नाम लेता हुआ मधुकरी माँग कर खाता था फिर (प्रौढ़ावस्था में) सांसारिक व्यवहार में पड़कर अज्ञान वश महाराजा श्रीरामचन्द्र जी की पवित्र प्रीति को भाँति–भाँति के अनुमान करके मैं अत्यन्त शीघ्र ही तोड़ बैठा । उस समय खोटे–खोटे आचरणों को करते हुए भी मुझे अंजनी कुमार श्रीहनुमान् जी ने अपनाया और फिर श्रीराम जी के भी पवित्र हस्त कमलों से मुझे शुद्ध करवाया। अब यह तुलसीदास गोस्वामी हुआ (इसे गोस्वामी की पदवी मिली) इसे पहले के खोटे दिन भूल गये, अन्त में यह उसका फल पा रहा है।

(४१)

असन–बसन–हीन, बिषम–बिषाद–लीन,
देखि दीन दूबरो करै न हाय–हाय को।
'तुलसी' अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,

दियो फल शील-सिंधु आपने सुभाय को ॥
नीच यहि बीच पति पाय भरुहाय गो,
बिहाइ प्रभु भजन बचन मन काय को ।
ताते तनु पेखियत घोर बरतोर मिसि,
फूटि-फूटि निकसत लोन राम राय को ॥

शब्दार्थ-पति = प्रतिष्ठा । भरुहाइ = (भारी होना) = घमंड करना, अभिमान करना । बरतोर (बाल-तोड़) = वह फुंसी या फोड़ा जो बाल उखड़ने से हो । फूटि-फूटि = अंग फोड़-फोड़कर ।

अर्थ-जिसको भोजन और वस्त्र से रहित, विकट दुःख में निमग्न और दीन एवं दुर्बल देखकर, ऐसा कौन था जो हाय ! हाय !! कहकर अपनी सहानुभूति नहीं प्रकट करता था ? उस अनाथ तुलसी दास को श्रीरघुनाथ जी ने सनाथ किया और उन शीलसागर ने अपने उत्तम स्वभाव के अनुसार बर्त्ताव (प्रतिष्ठा दान) रूपी उत्तम फल दिया, परन्तु मैं ऐसा नीच हूं कि इसी बीच में प्रतिष्ठा पाकर अपने को भारी मानने लगा (फूल उठा) और इसी में पड़कर मन, कर्म और बचन से प्रभु के भजन को छोड़ बैठा । उसी से शरीर में भयंकर बरतोर के ब्याज से महाराज श्रीराम जी का नमक अंग फोड़-फोड़कर निकलता हुआ दिखाई देता है ।

विशेष-'असन-बसन-हीन...को', यथा-''जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस, खाये टूक सबके बिदित बात दुनी सो ॥''

(४२)

जीवौं जग जानकी-जीवन को कहाइ जन,
मरिवे को बारानसी, बारि सुरसरि को
'तुलसी' के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ,

जाकै जिये मुये सोच करि हैं न लरिको ॥
मोको झूठो-साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को न हरिको ।
भारी पीर दुसह सरीर ते बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ॥

शब्दार्थ-वारानसी = बनारस, काशी। ऐसे ठाँउँ = काशीसरीखे पुण्यस्थल मैं। लरिको = अबोध भी।

अर्थ-मैं श्रीजानकी-जीवन श्रीराम जी का भक्त कहला कर जगत् में जीता हूँ। मरने के लिये काशी स्थल में और श्रीगंगाजी के तट पर निवास है, जिससे गंगाजल ही पीने को भी मिलता है। अत: इस तुलसीदास के इस उत्तम स्थल में निवास करने से दोनों हाथों मैं लड्डू हैं। जिसके जीने और मरने के विषय में सयानों की कौन कहे, अबोध लड़के भी शोच नहीं करेंगे, तात्पर्य यह कि मेरा जीवन उत्तम है और मरण का साज भी उत्तम है। अत: लोक-परकोक दोनों की चिन्ता मुझे नहीं है, जीते प्रशंसा है और मरने पर भी प्रशंसा ही होगी, तब चिन्ता कैसी ? यही भाव 'मोदक हैं दुहूँ हाथ' इस कहावत का है मैं चाहे झूठा होऊँ और चाहे सच्चा, पर मुझे सब लोग श्रीराम जी का भक्त कहते हैं और मेरे मन में भी इस बात का गर्व है कि मैं श्रीराम जी का हूँ, न शिवजी का हूँ और न विष्णु भगवान् का। तब मैं जो शरीर की भारी असह्य बेदना से व्याकुल हो रहा हूँ उसको भी बिना श्रीरघुनाथ जी के और कौन दूर कर सकता है ?

(४३)

सीता-पति साहेब सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै ।
मानस बचन काय सरन तिहारे पाय,

तुम्हरे भरोसे सुरमैं न जाने सुर कै ।।
ब्याधि भूत-जनित उपाधि काहू खल की,
समाधि कीजे 'तुलसी' को जानि जन फुर कै।
कपिनाथ, रघुनाथ, भोरानाथ, भूतनाथ !
रोग सिंधु क्यों न डारियत गाय-खुर कै ?

शब्दार्थ-समाधि = ग्रहण करना, अंगीकार करना समाधान किसी के मन के संदेह दूर करने वाली बात। हि.श.सा. तिहारो = तुम्हारा, तम तीनों का ('तू' एक बचन का तुम बहु बचन होता है)।

अर्थ-मेरे स्वामी श्री सीता जी के स्वामी श्रीरामजी है, श्री हनुमान् जी नित्य मेरी सहायता करने वाले हैं और हित का उपदेश करने के लिये मैं श्री शिवजी को गुरु करके मानता हूँ। मन, बचन और शरीर (कर्म) से आप तीनों की शरणागति पाकर मैं ने आप तीनों के भरोसे और देवता को देवता (पूज्य) करके नहीं माना। किसी दुष्ट की उपाधि (उपद्रव) से य भूत द्वारा होने वाला रोग मुझे दुःख दे रहा है। इस तलसीदास को अपना साचा सेवक जानकर इसे समाधान कीजिये, अर्थात् समझा कर इसे सान्त्वना दीजिये। हे कपिनाथ श्रीनुमान्जी ! हे रघुनाथ श्री रामजी !! और हे भूतनाथ श्री शिवजी !!! इस रोग समुद्र को गाय के खुर भर जलके समान क्यों नहीं कर डालते ?

(४४)

कहौं हनुमान सों, सुजान राम राय सों,
कृपा-निधान संकर सों, सावधान सुनिये।
हरष-विषाद, राग-रोष, गुन-दोष-मई,
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये ।।
माया जीव काल के, करम के, सुभाय के,

करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिये।
तुम्ह ते कहा न होइ, हा-हा! सो बुझैये मोहिं
हौं हूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिये॥

अर्थ-मैं श्रीहनुमान जी से, सुजान महाराज श्रीराम जी से और कृपा-निधान श्रीशिव जी से कहता हूं, आप लोग सावधान होकर सुनें। ऐसा देखा जाता है कि विधाता ने इस संसार को हर्ष-विषाद, राग-रोष एवं गुण और दोषमय बनाया है। वेद ऐसा कहते हैं कि माया, जीव, काल, कर्म और स्वभाव के करने वाले श्रीराम जी है। मनमें विचार करने पर यही बात सत्य जान पड़ती है। फिर आप लोगों से क्या नहीं हो सकता ? मैं गिड़गिड़ा कर बिनती करता हूँ, यह मुझे समझा दीजिये, बस फिर मैं मौन ही रह जाऊँगा, य जानकर कि जो बोया (कर्म किया) था, वही काट (फल प्राप्त कर) रहा हूँ। है जो कर्म-भोग शिर पर आ पड़ा है, अन्यथा शुद्ध-शरणागत पर बाधा कैसी ? यथा-''सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥'' (मा.कि.१६), अर्थात् जैसे मछली जल मात्र के आधार से जीती है, ऐसेही एकमात्र भगवान् को ही जो उपाय और उपेय (फल) मानते हैं वे ही शरणागत है और भगवान् उन्हीं का सारा भार वहन करते है, यथा-''उपायत्वमुपेयत्वमीश्वरस्यैव यद्भवेत्। शरणागतिरित्युक्ता शास्त्रमानाद्विवेकिभिः ॥'' (रहस्यत्रय), ''अन्नयाश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'' (गीता ९/२२), ''राम कबहुँ प्रिय लागि हौ जैसे नीर मीन को।'' (वि. २६९), ''आस्तिः स हि युकात्मा मामे-वानुत्तमां गतिम्।'' (गीता. ७/१८)।

'मूरति मोद-निधान की'

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी ॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरूदावलि नहिं आनकी।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन, मूरति मोद-निधानकी ॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरू जानकी।
तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी ॥

(विनय - पत्रिका)

जिसको (सब प्रकार से) श्रीहनुमान्‌जी का आश्रय है, उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो ही गयी। यह सिद्धान्त वज्र (हीरे) की लकीरके समान अमिट है। क्योंकि श्रीहनुमान्‌जी असम्भव घटनाको सम्भव और सम्भवको असम्भव करनेवाले हैं, ऐसे यशका बाना दूसरे किसीका भी नहीं है। श्रीहनुमान्‌जी की आनन्दमयी मूर्तिका स्मरण करते ही सारे संकट और शोक मिट जाते हैं। सब प्रकारके कल्याणोंकी खान श्रीहनुमान्‌जी की कृपा-दृष्टि जिसपर है, हे तुलसीदास ! उसपर पार्वती, शंकर, लक्ष्मण, श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा किया करती हैं।

मुद्रक- केशव कॉम्प्यूटर & मल्टी प्रिंटर्स, सागर (म.प्र.) ☎ 48403